राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान सम्पादक – पुरातत्त्वाचार्य जिनविजय मुनि

[सम्मान्य संचालक, राजस्थान पुरातत्त्वान्वेषण मन्दिर, जयपुर]

★

– ग्रन्थाङ्क २० –

भट्ट-लक्ष्मीधर-विरचितं

चक्रपाणिविजयमहाकाव्यम्

★

— प्रकाशक —

राजस्थान-राज्य-संस्थापित

राजस्थान पुरातत्त्वान्वेषण मन्दिर

(Rajasthan Oriental Research Institute; Jaipur.)

जयपुर (राजस्थान)

वि० सं० २०१३] प्रति ७५० [मूल्य रु०

३) रु० ५० न० पै०

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान सम्पादक – पुरातत्त्वाचार्य जिनविजय मुनि

[सम्मान्य संचालक, राजस्थान पुरातत्त्वान्वेषण मन्दिर, जयपुर]

★

– ग्रन्थाङ्क २० –

भट्ट-लक्ष्मीधर-विरचितं

चक्रपाणिविजयमहाकाव्यम्

★

— प्रकाशक —

राजस्थान-राज्य-संस्थापित

राजस्थान पुरातत्त्वान्वेषण मन्दिर

(Rajasthan Oriental Research Institute; Jaipur.)

जयपुर (राजस्थान)

वि० सं० २०१३] प्रति ७५० [मूल्य रु०

रु० 10 न० पै०

प्रकाशक –
संचालक – राजस्थान पुरातत्त्वान्वेषण मन्दिर, जयपुर, के आदेशानुसार – गोपालनारायण बहुरा ।
मुद्रक –
जयन्ति दलाल, वसंत प्रिण्टिंग प्रेस, घीकांटा रोड, अहमदाबाद

भट्ट-लक्ष्मीधर-विरचितं

चक्रपाणिविजयमहाकाव्यम्

★

सम्पादक

प्राध्यापक केशवराम काशीराम शास्त्री

(क्युरेटर एवं गुजरातीके प्राध्यापक-भो. जे. अध्ययन-संशोधन विद्याभवन, गुजरात विद्यासभा, अहमदाबाद)

★

—: प्रकाशक :—

राजस्थान-राज्याज्ञानुसार

संचालक-राजस्थान पुरातत्त्वान्वेषण मन्दिर

(Rajasthan Oriental Research Institute; Jaipur.)

जयपुर (राजस्थान)

विक्रमाब्द २०१३] प्रथमावृत्ति ★ मूल्य रू० [खिस्ताब्द १९५६

अनुक्रम

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला



[चक्रपाणिविजय महाकाव्य, जैसलमेरस्थित एकमात्र प्राचीन ताडपत्रीय पोथीके आदिम तथा अंतिम पृष्ठोंकी प्रतिकृति]

प्रधानसंपादकीय वक्तव्य

*

स्वर्गस्थ प्राध्यापक श्रीधर रामकृष्ण भाण्डारकर M. A ने सन् १९०४–५ में, बंबई सरकारकी ओरसे राजपूताना और मध्यभारतमें, संस्कृत साहित्यके हस्त-लिखित ग्रन्थोंकी खोज करने निमित्त, प्रवास किया था। राजस्थानमें सबसे प्राचीन ग्रन्थभण्डार जेसलमेरके जैन मन्दिरमें सुरक्षित होनेकी जानकारी उनको महान् जर्मन विद्वान् डॉ. व्युह्लरके लेखों-विवरणोंसे हो चुकी थी; अतः वे जेसलमेरके ज्ञानभण्डारमें सुरक्षित उस अपूर्व साहित्यनिधिका निरीक्षण करने निमित्त जेसलमेर गये। अध्यापक भाण्डारकरने, अपने इस प्रवासकार्यकी एक विस्तृत विवरणी लिख कर, बंबई सरकारको उपस्थित की जो सन् १९०७ में सरकार द्वारा छपकर प्रकाशित हुई[1]।

उक्त निरीक्षणमें भाण्डारकरजीको, लक्ष्मीधर भट्ट प्रणीत चक्रपाणिविजय काव्यकी मूल ताडपत्रीय प्राचीन पोथी भी देखनेको मिली जिसका संक्षिप्त उल्लेख उनने अपनी उक्त विवरणीमें अंकित किया।

इस पोथीको सबसे पहले, डॉ० व्युह्लर, सन् १८७४ में जब जेसलमेर गये तब, उनने देखी और इस काव्यकी विशिष्टताको लक्ष्य कर, बंबईके सरकारी ग्रन्थसंग्रहके लिये, किसी स्थानीय पण्डित द्वारा प्रतिलिपि करवा ली। सन् १९१८-१९ में, मैं जब बंबईके उस महान् ग्रन्थसंग्रहका – जो अब पूनाके प्रख्यात भाण्डारकर ओरिएण्टल रीसर्च इन्स्टीटयूटमें सुरक्षित है – निरीक्षणादि कार्य करता था तब, मेरे देखनेमें वह प्रतिलिपि आई। बड़ौदाके ओरिएण्टल रीसर्च इन्स्टीटयूट द्वारा, गायकवाडस् ओरिएण्टल सीरीझका प्रकाशनायोजन करनेवाले मेरे सद्गत सुहृद् विद्वान् श्री चिमनलाल दलालने, मुझे लिखा कि यदि यह ग्रन्थ प्रकाशमें लाने योग्य हो तो इसको गायकवाडस् ओरिएण्टल सीरीझमें प्रकाशित कर दिया जाय। इस दृष्टिसे मैंने उक्त प्रतिलिपिका अवलो-कन किया तो ज्ञात हुआ कि प्रतिलिपि बहुत ही अशुद्ध है अतः विना जेसल-मेरकी मूल पोथीसे मिलान किये इसका संपादन होना कठिन है। उसके बाद कोई १२ वर्ष अनन्तर, सौभाग्यसे मुझे भी जैसलमेरके उक्त ज्ञानभण्डारका समुचित निरीक्षण करनेका सुअवसर प्राप्त हुआ और तब इस काव्यकी वह असल ताडपत्रीय पोथी भी मेरे देखनेमें आई। मैंने अपने सुयोग्य एवं सुहृद् साथी अध्यापक श्री केशवरामजी शास्त्रीसे निवेदन किया कि वे स्वयं अपने हाथसे इस काव्यकी शुद्ध प्रतिलिपि कर लें जिससे कभी भविष्यमें इसके प्रकाशनका सुयोग आवे तो संपादन करनेमें उपयुक्त हो। शास्त्रीजीकी वह स्वहस्तलिखित प्रतिलिपि गुजरात विद्यासभाके संग्रहमें रखी गई। दैवयोगसे

---

१ इस विवरणीका हिन्दी अनुवाद, इसी राजस्थान पुरातन ग्रन्थमालामें प्रकाशित हो रहा है।

मेरे द्वारा इस 'राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला'के प्रकाशनका आयोजन निश्चित हुआ तब मेरे मनमें सन् १९१८ में, स्व. चिमनलालजी दलालकी वह सुषुप्त सूचना जागृत हो उठी और तदनुसार मैंने इसका प्रकाशन, प्रस्तुत ग्रन्थमालाके एक मणिके रूपमें निश्चित करके, संपादन कार्य श्रीकेशवरामजी शास्त्री ही को सौंपा।

शास्त्रीजी गुजरातके इनेगिने विद्वानोंमें एक लब्धप्रतिष्ठ व्यक्ति हैं। प्राचीन राजस्थानी और गुजराती भाषाके बडे मर्मज्ञ लेखक, विवेचक एवं शोधक विद्वान् हैं। भाषाशास्त्र इनका प्रिय और प्रधान विषय है। अनेक प्राचीन ग्रन्थोंका संशोधन-संपादन-प्रकाशन कर इनने यथेष्ट ख्याति प्राप्त की है। इनके द्वारा प्रस्तुत काव्यका संपादन हो कर, राजस्थान पुरातन ग्रन्थमालाके एक मूल्यवान् मणिके रूपमें, इस प्रकार उपस्थित हुआ देख कर मुझे हर्ष हो रहा है। आशा है कि संस्कृत साहित्यके सभी प्रेमी विद्वानोंको यह प्रयास प्रसन्नतादायक होगा।

जेसलमेरके अनेक प्राचीन ताडपत्रीय ग्रन्थोंके महत्त्वके पत्रोंका फोटू आदि लेनेका मैंने प्रयत्न किया था उनमें प्रस्तुत काव्यकी उक्त ताडपत्रीय प्रतिके अन्तिम दो पत्रोंका भी फोटू खिंवा लिया था। वहां पर मुझे उस समय इस कामके कोई अच्छे साधन उपलब्ध नहीं थे, इससे जैसा चाहिये वैसा काम नहीं हो सका था। इसके साथ उस फोटूका ब्लाक बनवा कर, उस परसे अंकित, प्रतिकृति दी जा रही है जिसके अवलोकनसे पाठकोंको यह ज्ञात हो सकेगा कि इस ग्रन्थकी एकमात्र पोथी, जो हमारे राजस्थानके दर्शनीय ज्ञानभण्डारमें अद्यापि सुरक्षित है, वह आकार-प्रकारसे कैसी है। पोथीके बारेमें विशेष परिचय संपादकजीने अपनी प्रस्तावनामें दिया ही है। अन्तमें प्रस्तुत काव्यके संपादन एवं प्रकाशन आदिमें जो हार्दिक सहयोग श्री केशवरामजी शास्त्रीने प्रदान किया है उसके लिये मैं अपना हार्दिक कृतज्ञभाव प्रकट करना चाहता हूं।

राजस्थान पुरातत्त्वान्वेषण मन्दिर
जयपुर
(१-१०-१९५६)

मुनि जिनविजय
सम्मान्य संचालक,
राजस्थान पुरातत्त्वान्वेषण मन्दिर

प्रास्ताविक

*

ई. स. १९४२ के नवम्बरकी बात है। स्वनामधन्य आचार्य श्रीजिनविजयजी मुनिने जैसलमेरके पुरातन एवं समृद्ध ग्रन्थभण्डारोंकी खोजके लिये जानेका निश्चय किया। यह निश्चय आपने अहम्मदाबादकी सुप्रसिद्ध गुजरात विद्यासभाके डायरेक्टर प्रो. श्रीरसिकलालजी परीखको सूचित किया तब उन्होंने विद्यासभाकी ओरसे वहां जानेकी और आचार्यश्रीकी छत्रछायामें भण्डारोंका विशिष्ट परिचय प्राप्त कर आनेकी मुझे भी आज्ञा दी। नवम्बर ३०, ई. स. १९४२ के दिन हम अहम्मदाबादसे निकले और बहाड़मेर हो कर दिसम्बरके प्रथम दिन जैसलमेर पहुंचे। हम लोग गये तो थे सिर्फ तीन चार सप्ताहके लिये, किन्तु ज्यों ज्यों हम वहां ग्रन्थ देखते गये और उनकी प्रतिलिपि आदि करने लगे त्यों त्यों ज्यादा ठहरना आवश्यक बनता गया। इस प्रकार आचार्यश्रीके संचालनमें कोई पूरे पांच महिने ठहरनेका मुझे लाभ मिला, और करीब १८००० श्लोक परिमाण जितने साहित्यिक सामग्रीसे पूर्ण प्राचीन ताड़पत्रीय ग्रन्थोंकी प्रतिलिपि करनेका मुझे अनुपम योग मिला। प्रस्तुत चक्रपाणिविजय महाकाव्य जो आज विद्वानोंके करकमलमें शोभित हो रहा है वह उसी योगका फल है। गुजरात विद्यासभाके भो. जे. विद्याभवनमें, अध्यापन-संशोधन-संपादनका कार्य करते करते जो कुछ अनुभव प्राप्त हुआ, और उक्त प्रकारसे आचार्य श्रीजिनविजयजी महाराज एवं अध्या० श्रीरसिकलालजी परीखकी प्रेरणासे विद्यासभाने प्रस्तुत संपादन करनेकी जो अनुज्ञा प्रदान की, उसी निमित्तसे आज श्रीमुनिजी महाराज ही के सत्प्रयत्नसे, राजस्थान सरकार द्वारा संस्थापित एवं उन्हींके विशिष्ट संचालन और संपादन विषयक कुशल कर्तृत्वके नीचे राजस्थानके गौरवशाली ग्रन्थ-भण्डारोंमें सुरक्षित इस प्रकारके अपूर्व ग्रन्थरत्नोंका उद्धार कर, उनको प्रकाशमें लानेके लिये प्रारब्ध इस 'राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला' के एक पुष्पके रूपमें प्रस्तुत महाकाव्यको विद्वज्जनोंके सम्मुख उपस्थित करनेका मुझे सुयोग मिला है। मैं इसके लिये श्रीमुनिजी महाराजके प्रति विशिष्ट रूपसे अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करना चाहता हूं।

ग्रन्थकी आदर्शभूत पुस्तिका

प्रस्तुत ग्रन्थकी आदर्शभूत मूल पुस्तिका जैसलमेरके बड़े भण्डारमें है। वह ताड़पत्र पर लिखी गई है। कहीं अन्यत्र इस ग्रन्थकी प्रतिलिपि जाननेमें नहीं है। पूनाके भाण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीटयूटमें संरक्षित राजकीय ग्रन्थसंग्रहमें जो इसकी प्रतिलिपि है, वह जैसलमेर ही से प्रतिलिपि की गई है

जैसलमेरकी इस ताड़पत्रीय पुस्तिकाके ११७ पत्र हैं, जिनमें १ अ और ११७ आ पृष्ठ कोरे हैं। प्रत्येक पत्रकी लम्बाई १३½" और चौडाई १¾" इंच है।

प्रत्येक पृष्ठ दो विभागमें-४½" और ६¼"में लिखा गया है। लेखन भागकी चौड़ाई १¼" इंच है। प्रत्येक पृष्ठ ऊपर ४ से ५ पंक्तियां लिखी हुई हैं, और ४½" इंच वाले विभागमें लिखित पंक्तियोंमें २३-२४ अक्षर एवं ६¼" इंच वाले विभागमें अंकित पंक्तियोंमें ३३-३४ अक्षर हैं।

इस पुस्तिकाकी विशेषता

प्रस्तुत मुद्रित ग्रन्थके देखनेसे तो विद्वानोंको शायद वैसा लगेगा कि इस काव्यकी एक से अधिक प्रतियां मिली हो, परन्तु वैसा नहीं है। इसका कारण यह है कि मूल हस्तलिखित प्रतिमें स्थान स्थान पर, पत्रकी किनारोंमें किसी विद्वानने, प्राचीन समयमें ही बारीक अक्षरोंमें पाठान्तर आलेखित किये हैं। आरंभके कितनेक पृष्ठों पर तो विषमपद टिप्पण भी दिये गये हैं। वे सभी प्रस्तुत संपादनमें पादटिप्पणीके रूपमें दे दिये गये हैं। इससे एक लाभ यह हुआ कि कितनेक दुरूह स्थानोंकी कुछ न कुछ स्पष्टता हो जाती है। पाठान्तरोंसे दो तीन स्थानोंमें तो काव्यका पाठ, ज्यादह संगत बन गया है। वैसे स्थानोंमें मूल आदर्शका पाठ पादटिप्पणीमें रख कर, पाठान्तरको ऊपरकी वाचनामें दे दिया है और उसका सूचन नीचे पादटिप्पणीमें कर दिया है।

प्रक्षिप्त श्लोक भी कतिपय मिले हैं। सप्तम सर्गमें ६६ वें पद्यके बाद ६८ का अंक मिलता है। इसके दो कारण हो सकते हैं-एक तो यह कि प्रतिलिपि करनेवालेने गलतीसे ६७ के बदले ६८ का अंक लिख दिया हो, या फिर दूसरा यह कि ६७ वां श्लोक ही लिखना रह गया हो। अर्थानुसंधानकी दृष्टिसे इसमें कोई त्रुटी मालूम नहीं हो सकती।

पुस्तिकाका समय

इस पुस्तिकाके अन्तमें निम्नगत पुष्पिका प्राप्त होती है—

॥ छ ॥ इति भट्टलक्ष्मीधरकृतौ चक्रपाणिविजये महाकाव्ये बाणदोःखंडनं नाम विंशतितमः सर्गः समाप्तः ॥ छ ॥ छ ॥ छ ॥ छ ॥ मंगलं महाश्रीः ॥ छ ॥ छ ॥

इसमें लिपिकर्ताने अपना समय आदिका कोइ निर्देश नहीं किया है, तो भी ताड़पत्र और अक्षरोंके स्वरूप पर से इसका समय विक्रमकी चौदहवीं शताब्दी होना अनुमानित किया जा सकता है। चौदहवीं शताब्दीके पूर्ण होनेके साथ साथ ताडपत्रीय लेखनपरंपरा भी प्रायः लुप्त हो जाती है और उसके बाद विशेषतया कागज़ पर ही लिखना व्यापक बन जाता है।

इस महाकाव्यका कर्ता

२० सर्गोंके इस काव्यके प्रत्येक सर्गके अन्तमें मिलने वाले "इति भट्टलक्ष्मीधरकृतौ चक्रपाणिविजये महाकाव्ये" इन शब्दोंसे यह तो अत्यन्त स्पष्ट

है कि इस काव्यका रचयिता कोई भट्ट लक्ष्मीधर है। साथमें कविने अपना कुछ विशेष परिचय भी काव्यके आरम्भमें दिया है जिससे उसकी जन्मभूमि एवं कहां रह कर उसने इस काव्यकी रचना की वह भी कुछ ज्ञात होता है। इस परिचयात्मक उल्लेखका सार इस प्रकार है—

(१) गौड़देशमें भट्टकोशल नामक गाम था, जहां शाण्डिल्यगोत्रीय ब्राह्मणोंका निवास था। उनमें नरवाहण भट्ट हुआ, जिसका पुत्र अजित, जिसका वैकुण्ठ, जिसका श्रीस्तम्भ, और उसका लक्ष्मीधर पुत्र हुआ (श्लो. २-७)।

(२) यह लक्ष्मीधर श्रीभोजदेवकी राजसभामें रहता था, जहां उसके ठहरनेसे दुर्जनोंका आनाजाना दूर हो गया था (श्लो. ९)।

कविकी विनम्रता

लक्ष्मीधरने अपनी विनम्रता काव्यारम्भमें स्पष्ट-स्वरूपसे इस प्रकार प्रकट की है—

(३) ओजस् एवं कान्ति इन दोनों गुणोंसे हीन होते हुए भी चन्द्रोदय-ध्यानपरायण कुमुद्वती की तरह उसकी सरस्वती नीरस नहीं है।

(४) यद्यपि आदिकवि-वाल्मीकि एवं कालिदासके प्रबन्धोंकी तुलनामें अपना काव्य कुछ नहीं है, तो भी सुनने योग्य तो है ही। भास्वन्निरस्तद्युतिमण्डल होने पर भी दिनमें दिख पड़नेवाला चन्द्र क्या सुधामय नहीं होता है?

कविका आश्रयदाता भोजदेव

यह निश्चयरूपमें कहना मुश्किल है कि लक्ष्मीधरका आश्रयदाता भोजदेव कौन था। अनेक राज्योंमें, अनेक भोजदेव हो गये हैं। उनमेंसे यह भोजदेव

---

१. ग्रामोऽस्ति **शाण्डिल्य**कुलोद्गतानां गौडेषु **भट्टाङ्कितकोशलाख्यः** ।×× ॥२॥
तत्राननश्रेणिशुचौ विरञ्चेर्बभूव **भट्टो नरवाहणाख्यः** × × ॥३॥
देवो विवस्वानिव कश्यपस्य **तस्याजितो** नाम बभूव सूनुः । × × ॥४॥
आकण्ठतृप्तं प्रशमामृतैः स **वैकुण्ठ**नामानमकुण्ठविद्यम् ।
असूत सूनुं स बभूव यस्य विद्यातपोधाम सुतः सुनामा ॥५॥
× × × द्वारि श्रियं स्तम्भयतो बभूव **श्रीस्तम्भ** इत्येव हि यस्य नाम ॥६॥
× × × **लक्ष्मीधरो** नाम तदीयसूनुरनुप्रविष्टः सुजनस्य कक्षाम् ॥७॥

२. श्रीभोजदेवेन्दुविराजितायां तस्यां सभापञ्चदशीनिशायाम् ।
विनापि मुद्रामतिवाह्यमेव दूरीकृतं दुर्जनतस्करेण ॥९॥

३. ओजोविहीनापि विनापि कान्तिं कृता हरेः कीर्तिसमाधिनेति ।
चन्द्रोदयध्यानपरायणेव कुमुद्वती यस्य न नीरसा गीः ॥१-८॥

४. आकर्ण्यतां काव्यमिदं तदीयं जितं यदप्यादिकविप्रबन्धैः ।
भास्वन्निरस्तद्युतिमण्डलोऽपि सुधामयः किं न दिवातनेन्दुः ॥१-१०॥

कौन था ?, यह कहना कठिन है पर बहुत संभव है कि यह भोजदेव वही सुप्रसिद्ध धाराधिपति परमारवंशीय भोजदेव होगा। प्रसिद्ध है कि उक्त भोजदेवके दरबारमें बहुतसे पण्डित आश्रय पा कर रहते थे और लक्ष्मीधरकी

"श्रीभोजदेवेन्दुविराजितायां तस्यां सभापञ्चदशीनिशायाम्"

इस पंक्तिमें कोई अर्थविशेष गर्भित हो तो "पञ्चदशी"से पंद्रह विद्वानोंकी संभावना अयुक्त नहीं है। वैसे पंद्रह बलिष्ठ विद्वानोंमें लक्ष्मीधर एक हो तो, यह इस काव्यकी माधुर्य एवं प्रसादपूर्ण रचनासे पोषित हो सकता है।

माघको यह अच्छी तरह जानता है। जब चित्रलेखा द्वारकामें जाती है और वहां बाज़ारोंको देखती है तो उसे, वे बाज़ार रघु-बाण-व्यासायमान दीख पड़ते हैं-अर्थात् बाज़ारोंमें भी कालिदास, माघ, बाण और व्यासकी कृतियोंमेंसे लोग सुभाषित बोल रहे हैं, या तो उन कवियोंकी तरह नयी रचनाएं अथवा आलंकारिक काव्यभाषा प्रयुक्त कर रहे हैं। गौड़देशके रहनेवाले कविको भिन्नमालके कवि माघकी सुप्रसिद्ध काव्यकृति-शिशुपालवध महाकाव्य परिचित है, यह बात भूमिके साथ लक्ष्मीधरका निकट संबंध बतलाती है। इससे धारापति भोजदेवकी सभामें उसका होना असंभवित नहीं है।

इस लक्ष्मीधरकी कोई अन्य कृति जाननेमें नहीं है। 'षड्भाषाचंद्रिका' का कर्ता जो लक्ष्मीधर है वह कोई अन्य ही है। आचार्य हेमचन्द्रके बादके प्राकृतवैयाकरण त्रिविक्रमके सूत्रों परसे उस लक्ष्मीधरने षड्भाषाचंद्रिका बनाई है। यहां इतनी स्पष्टता करनी आवश्यक है कि त्रिविक्रमके व्याकरणके सूत्र वाल्मीकिकृत माने जाते हैं, किन्तु उन सूत्रोंकी रचना तो आचार्य हेमचन्द्रके प्राकृतव्याकरणके सूत्रों परसे की गई है ऐसा स्व. कमलाशंकर प्रा. त्रिवेदीने 'षड्भाषाचंद्रिका'की इंग्रेजी प्रस्तावनामें सिद्ध किया है। अतः षड्भाषाचंद्रिकाकार वैसा प्राचीन नहीं है।

काव्यकी कथावस्तु

इस काव्यकी कथावस्तु तो बहुत सुप्रसिद्ध है। दानवराज बलिके पौत्र बाणकी इकलौती पुत्री उषाने स्वप्नमें कृष्णपौत्र अनिरुद्धको देखा और उसके साथ प्रेमाविष्ट हो गई। जागृतावस्थामें उषाकी विह्वलता को देख कर, प्रधान-कुष्माण्डपुत्री सखी चित्रलेखाने अपनी चित्रकलाशक्तिकी सहायतासे उषाको उसके प्रियतमका दर्शन कराया। फिर चित्रलेखा द्वारकामें गई और वहांसे अपनी विद्याके बलसे उस अनिरुद्धको ले आई। उषा और अनिरुद्ध प्रमोद करने लगे। पिताको पता चला कि कोई अज्ञात पुरुष राजभवनमें उषाके पास है। उसने उसको परास्त करनेका यत्न किया। इस बातका पता नारदजी द्वारा कृष्ण-बलरामको द्वारकामें लगा और पौत्रकी सहायतामें वे दौड़ पड़े। बाणकी

१ ददर्श तस्यां रघु-माघ-बाण-व्यासायमाना व्यवहारवीथ्यः ॥ ८-६० ॥

ओरसे भगवान् शंकर युद्धमें आये, कार्तिकेय भी आया। आखिरमें भगवान् कृष्णने सुदर्शनचक्रसे बाणके दो हजार हाथोंको निर्मूल किये और विजय पा कर पौत्र एवं पौत्रवधूको साथ ले कर द्वारका आ पहुंचे। इस कथावस्तु को कविने काव्यशास्त्रोक्त महाकाव्यलक्षणोंसे समृद्ध करके अपना यह सुन्दर काव्य रचा है। वस्तु नवीन न होने पर भी अपनी प्रतिभासे कविने नया आविष्कार प्रदर्शित किया है। पाठक एवं विद्यार्थिगणको अवश्य आह्लादक लगे वैसी सरल एवं प्रासादिक शैलीमें कविने यह अपनी रचना उपस्थित की है।

भट्टलक्ष्मीधरके विषयमें जो कुछ प्राप्य है वह इतना ही है।

एकमात्र प्राप्त प्रति परसे यह संपादन हुआ है, इससे बहुतसे स्थानोंमें अर्थोद्घाटन संतोषप्रद नहीं होता है। मैंने स्वतंत्ररूपसे कुछ विषमपदटिप्पणी-पूर्ति की है। इससे पाठकोंको कुछ सुविधा होगी।

इस काव्यका संपादन करनेकी आज्ञाके लिये आचार्य श्री जिनविजयजी एवं गुजरात विद्यासभाके भो. जे. विद्याभवनके अध्यक्ष (डायरेक्टर) श्री रसिकलालजी परीखका मैं बहुत ही आभारी हूं।

अहमदाबाद ता. १-९-५६ केशवराम का. शास्त्री

शुद्धिपत्रम्

मुद्रणयन्त्रके कारण क्वचित् मात्रा आदिक चिह्न तूट गये हैं। क्वचित् लेखनदोष भी रह गये हैं। इनमें यथादृष्ट कुछ अशुद्धियोंका शुद्धीकरण यहां बताया गया है।

पृ.	पं.	अशुद्ध	शुद्ध	पृ.	पं.	अशुद्ध	शुद्ध
४	७	-परिग्रहार्थं-	-परिग्रहार्थ-	४२	२	स्वर्गऽपि	स्वर्गेऽपि
६	६	वतृष्णय-	वैतृष्ण्य-	,,	१५	-म्बुसीता	-म्बुशीता
८	८	भुवि	भुवि²	५२	११	-कैतकः	कैतकैः
,,	२०	तुरगमाः	तुरंगमाः	५६	३	अन्त(ः)-	अन्त[ः]-
९	२५	ह्म-	ब्रह्म-	५७	१२	-खडग-	-खड्ग-
१६	७	-त्रितयाभराम-	-त्रितयाभिराम-	६१	१	-मरीचभिः	मरीचिभिः
१७	२७	-सरेणो[ः]परि-	-सरेणोपरि-	,,	५	...	तव
,,	२८	गङ्गा¹	गङ्गा⁴	,,	१५	-विभ्रि(?भ्र)भुक्त	-विभ्रिभुक्त(?)
,,	३०	...	४. 'रेवे'ति पाठः।	६६	२७	-द्दत्तार्ध-	-द्दत्तार्घ-
१८	२९	१. 'रेवा'		७०	२५	वधूतर्वम्	वधूर्व्रतम्
		इत्यपि पाठः ।		७२	१३	मृदुसीतो-	मृदुशीतो-
२०	३	माण-	मणि-	७५	६	व्रत	ब्रूत
२२	१०	-देश-	-देशै-	७७	१२	-दुच्छ्वासतु	-दुच्छ्वसितु
,,	१६	द्योः	द्यौः	७९	१६	पदग्रगाणाम्	यद्ग्रगाणाम्
२७	२७	सराजिनी	सरोजिनी-	८६	३	-वातामिं-	-वातोर्मि-
२८	१४	-काननरिव	-काननैरिव	८६	८	-तामिति	-तामेति
३१	२१	किंचित्किचि-	किंचित्किंचि-	८९	४	मुरारि	मुरारिः
,,	२२	वधरिव	वधूरिव	,,	६	-भिहतपपातः	-भिहतः पपात
३३	१४	-शंसात	-शंसति	९०	९	सदव	सदैव
,,	१६	दिशा-	दिशो-	,,	१४	मण्डलान	मण्डलानि
३६	१३	सकलाङ्गानि	सकलाङ्गानि	९४	२८	वराकीणा-	वराकीणां
,,	१८	पुराधसा	पुरोधसा			मागमः	मा गमः
४१	२२	-प्रसारितनेव	-प्रसारितेनेव	९६	२८	र्जटेरिव	धूर्जटेरिव
,,	२६	-ङ्गारित-	शृङ्गारित	१०४	१९	क्रुद्ध	क्रुद्धे

भट्ट-लक्ष्मीधर-विरचितं

चक्रपाणिविजयं

नाम महाकाव्यम् ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

अथ प्रथमः सर्गः ॥

पुनातु पा[1]दान्तपतद्धरित्रीसीमन्तरत्नप्रतिबिम्बितो वः ।
त[2]न्मस्तकारूढसुरारिभारनिरस्तिहेतोरिव चक्रपाणिः ॥१॥
ग्रामोऽस्ति शा[3]ण्डिल्यकुलोद्गतानां गौडेषु भट्टाङ्कितकोशलाख्यैः[4] ।
गङ्गेव नैवोष्णति यत्प्रसूतिरेकोन्नतः केशवपादसेवाम् ॥२॥
त[5]त्राननश्रेणिशुचौ[6] विरिञ्चेर्बभूव भट्टो नरवाहणाख्यः ।
श्रुतेः समस्कन्धतया स्थितानि श्रुत्यन्तराणीव वचांसि यस्य ॥३॥
देवो विवस्वानिव कश्यपस्य तस्याजितो नाम बभूव सूनुः ।
त्रयीमयस्य ज्वलतस्तपोभिर्यस्यार्धमादत्त समस्तलोकः ॥४॥
आकण्ठतृप्तं प्रशमामृतैः स वैकुण्ठनामानमकुण्ठविग्रम् ।
असूत सूनुं स बभूव यस्य विद्यातपोधाम सुतः सुनामा ॥५॥
नत्वोपनीतामपि पार्थिवेन्द्रैर्गुणानियं न क्षमते शवेति ।
द्वारि श्रियं स्तम्भयतो बभूव श्रीस्तम्भ इत्येव हि यस्य नाम ॥६॥
त्रस्तः शतच्छिद्रकवित्वकन्थाजातेऽपि जाड्ये खलवाक्यवह्नेः ।
लक्ष्मीधरो नाम तदीयसूनुरनुप्रविष्टः सुजनस्य कक्षाम् ॥७॥
ओजोविहीनापि विनापि कान्ति कृता हरेः कीर्तिसमाधिनेति ।
चन्द्रोदयध्यानपरायणेव कुमुद्वती यस्य न नीरसा गीः ॥८॥
श्रीभोजदेवेन्दुविराजितायां तस्यां सभापश्चदशीनिशायाम् ।
विनापि मुद्रामतिवाह्यमेव दूरीकृतं दुर्जनतस्करेण ॥९॥

---

१. कदाचित् दानवोपद्रुता धरा विष्णुपदद्वयं प्रणतवती इत्याम्नायः । २. तस्या भुवः शिरसि उपारूढदानवभरनिराकृतिकारणादिव प्रतिबिम्बितः । ३. शाण्डिल्यनामा मुनिः । ४. भट्टकोशलनामा ग्रामः । ५. ग्रामे । ६. ब्रह्मास्यवत् पवित्रे ।

आकर्ण्यतां काव्यमिदं तदीयं जितं यदप्प्यादिकविप्रबन्धैः ।
भास्वन्निरस्तद्युतिमण्डलोऽपि सुधामयः किं न दिवातनेन्दुः ॥१०॥ युग्मम् ॥
उदारसत्त्वैः सुकृतैः प्रजानां प्रजापतेरंश इवावतीर्णः ।
बभूव वंशे दनुजेश्वराणां विश्वैकरत्नं बलिरादिराजः ॥११॥
अप्यद्रिशृङ्गेष्वपि सिन्धुपारेष्वव्यापदा पादचतुष्टयेन ।
आद्ये युगे यद्वृषे एक एव निर्व्याजनिर्व्यूढियशांसि लेभे ॥१२॥
दीक्षावतः सोमपरिग्रहार्थमभ्यागते यस्य सदा सुरेन्द्रे ।
शची शुचैवाश्रुजलं मुमोच व्याजो बभूवाध्वरधूमखेदः ॥१३॥
विजृम्भितैश्वर्यमहोदयानामन्यानपेक्षासुखलालसानाम् ।
बभूव यत्राधिपतौ प्रजानां मर्यादयैव प्रभुभृत्यभावः ॥१४॥
दोर्दण्डदर्पोपशमात्सुराणां भयापहारेण च दानवानाम् ।
आसीज्जगद्रोप्तरि यत्र वीरे सर्वत्र शस्त्रव्यवहारभङ्गः ॥१५॥
यत्किंचिदप्प्यादित एव दत्तं तेनैव लोकेषु कृतार्थितेषु ।
आजन्म दृष्ट्वा जगदर्थिशून्यमन्तः प्रहृष्टं रुदितं च येन ॥१६॥
जनैरनीहैरवधीरितेषु सत्रेषु सर्वार्थमयेषु येन ।
अदानदीर्घाणि कथंकथंचिद् दिनानि दुःखादतिवाहितानि ॥१७॥
चिन्तामणेरप्यपि कल्पवृक्षादस्त्येव सर्वार्थिकृतार्थभावः ।
अतः स काष्ठोपलयो[ः] समानं दानं मनस्वी ह्रियमेव मेने ॥१८॥
आलोक्य दीनस्य मुखं सदुःखं कारुण्यकम्पाकुलितस्य यस्य ।
विश्वस्तमर्थैः स्वयमेव हस्ताद् दानं तु जानन्तु जनाः कठोराः ॥१९॥
यत्कल्पशाखी किल काष्ठभावं चिन्तामणिः प्रस्तरतां प्रपन्नः ।
अकल्पिताचिन्तितदानदीर्घं तन्नूनमस्यैव निशम्य नाम ॥२०॥
अहो निहीनैः किमहं मतोऽस्यैः स्थिते यदर्थार्थिनि दीनवर्गे ।
मामेकमेत्य स्थितमेतयेति पुपोष यस्याति रतिं न लक्ष्मीः ॥२१॥
न याति यस्मिन्सति कर्तुमुच्चैरुच्चैस्तरेष्वप्युचितं प्रणामः ।
तत्प्रक्रियाध्वस्तविनीतवृत्ति न जातु जातं प्रियमस्य राज्यम् ॥२२॥

---

१. अभ्याहतगतिना । २. धर्म उक्षा च । ३. नितरां निम्नः । ४. प्रकृतिनीचगायाः श्रियः । ५. ऊर्ध्वे स्थित ऊर्ध्वे सप्रतिज्ञ इत्यनेकार्थः । ६. प्रणामाधिकारः । ७, प्रक्रिया त्वधिकारः स्यात् ।

सतीश्वरत्वे परिवादशङ्कानिकामनीचैः शिरसः स यस्य ।
ध्रुवं भुवः सागरमेखलायास्त्यागो मनागुच्छ्वसितं बभूव ॥२३॥
तडिल्लतालोलतया धनानां यत्सत्तदत्यन्तमसत्समस्तम् ।
क्षीणं तु यत्पात्रसमर्पणेन कृती तदक्षीणतमं विवेद ॥२४॥
सदर्थमम्भश्चुलकं स मेने निरर्थकं जीवितमेकमेव ।
आप्यायनं हि प्रथमं पिपासोः परं तु गृह्णाति न कश्चिदर्थी ॥२५॥
जानन्ननं दु[ः]स्थितमर्थिलाभे विनार्थिनं नित्यमदानदु[ः]स्थः ।
आः कष्टमित्थं च तथा च दुःखी कथं स निन्ये दिवसानि साधुः ॥२६॥
दीनाननं वीक्ष्य यदस्य दुःखं दानेन तच्छाम्यति वा न वेति ।
इत्थं यदन्तर्गतकोविदानामन्योन्यमासन् प्रसृता विवादाः ॥२७॥
प्राप्तेऽर्थिनि प्रस्तुतहेमवर्षप्रहर्षरोमाञ्चितचारुगात्रः ।
क्षणादथ स्वप्न इति प्रबुद्धश्चकार यः शोकमपारमन्तः ॥२८॥
अजस्रदानैकविधिप्रवृत्तः स देहि देहीति सदा यदाह ।
अतस्तदीयो बुबुधे न सद्यः स्वस्मै प्रयुक्तोऽपि हि देहिशब्दः ॥२९॥
दयालुना तेन वनान्तरेषु क्षुत्पीडितारातिसमाकुलेषु ।
आकृष्टिविद्याधरकैतवेन नानार्थपूर्णाः पुरुषाः प्रयुक्ताः ॥३०॥
अनल्पमल्पेन धनेन धर्मं प्रयच्छतां वो यजमानतैव ।
इति स्वयं शङ्कितभङ्गभीरुश्चकार चाटूत्सवमर्थिना यः ॥३१॥
विधौ विधेये नृपमन्यमाहुराज्ञातमस्य द्विज एव चक्षुः ।
यथार्थमित्थं प्रणतः प्रसन्नैर्द्विजैः कृतार्थैरपि दीक्षितो यः ॥३२॥
यत्रोदिते दातरि कामधेनोः कामेषु लोकैरवधीरितेषु ।
मन्दानि जातानि पदानि नूनमाध्मायितापीनविसंस्थुलानि ॥३३॥
कष्टं स टङ्कव्रणवारणोऽपि न रोहणाद्रेरुपकारकोऽभूत् ।
यतो मनागेष विजृम्भमाणमाणिक्यगर्भातिशयो न भिन्नः ॥३४॥

---

१. सत् विद्यमानं धनादि । २. अविद्यमानम् । ३. सार्थकम् । ४. यतः कारणात् । ५. भोजनादिकाले व्यञ्जनादिकयाच्ञया आत्मने प्रेरितोऽपि देहिशब्दस्तदीयो न सत्वरं पार्श्वचरैरवगतः । ६. व्याख्यातम् । ७. ऊधः । ८. यतोऽस्य रोहणस्य प्रवर्धमानरत्नानां यो गर्भातिशयः आकार इति प्रसिद्धः स मनाक् स्वल्पमपि न भिन्नो न दीर्णः । अभिन्न-गर्भातिशयात् कष्टोत्पादकः स्यादिति टङ्कपीडानिषेधकोऽप्यनुपकारकः ।

महीमशेषां ददता स येन विजित्य नीतः करगोचरत्वम् ।
अलंक्रियामात्रकृतोपयोगश्चिन्तामणिः स्वे कटके विदध्रे ॥३५॥
पात्रे पुरोवर्तिनि त्रिभुवनाथे क्षोदीयसि क्ष्मावलये च देये ।
व्रीडास्मितं तस्य तदा तदासीच्चमत्कृतो येन स एव देवः ॥३६॥
उत्थापितस्तद्विजयाय दूरं मुरारिणा यश्चरणोरुदण्डः ।
स तस्य वतॄण्यय[1]यशोदुकूलतलस्थितच्छत्रनिभो बभूव ॥३७॥
किं वा मुदा गद्गदितैस्तदीयमाकर्ण्यते वा परिकीर्त्यते वा ।
यस्य स्वयैवार्थितृषा[2] निरस्ता जगत्तृषामुद्धरणप्रतिज्ञा ॥३८॥
जने म्रियमाणवियुज्यमाने प्रियमदोऽसीति च गीयमानः ।
अहो महासत्त्वमनाः स मानी ह्रियेव पातालतलं प्रविष्टः ॥३९॥
मुरारिणा वामनतानिभेन संकोचपूर्वोत्पतितेन दूरम् ।
द्यावापृथिव्यावपि लङ्घयित्वा न लङ्घितो यन्महिमा महीयान् ॥४०॥
अरातिचित्ते वससीति बन्दिवृन्दोदिते यः शुचिराचकम्पे ।
यतः स तत्रस्थतदीयनारीशरीरसंस्पर्शमिवाशशङ्के ॥४१॥
मृदुस्वभावैरपि यद्यशोभिरनङ्गबाणैरिव हृत्प्रविष्टैः ।
अचन्दनोच्छेद्यमचन्द्रसाध्यमवापुरन्तर्दवथुं द्विषन्तः ॥४२॥
स्फुरद्भिरुद्भासयति त्रिलोकीमलाञ्छने तत्र तदा यशोभिः ।
तृणा (? तीर्णे) परार्धेऽपि निवृत्ततेजाः शङ्के ह्रिया नाभ्युदितो मृगाङ्कः ॥४३॥
यत्कीर्तिपूर्णेषु दिगन्तरेषु तटावपि स्वैरमपारयन्ती ।
समेऽपि रूपे परमे विशेषे रसातलं यातु कथं न गङ्गा ॥४४॥
सा यद्यशोभिः परिपूरितस्य ब्रह्माण्डगम्भीरमहार्णवस्य ।
आकाशगङ्गा क्वचिदेकदेशे डिण्डीरराजीव रराज लोला ॥४५॥
उदग्रदण्डप्रतिमस्य यस्य दिशः शलाका इव काञ्चनाद्रेः ।
तस्योपरि न्यस्य यशोदुकूलं येनोद्धृतं विश्वजयातपत्रम् ॥४६॥
दृष्टं चकोरैश्चकितं रथाङ्गैश्चमत्कृतं चेतसि बन्धकीभिः ।
दृष्ट्वा यशो यस्य कृतेन्दुशङ्कैरकाण्ड एव क्षुभितं समुद्रैः ॥४७॥
मुहुर्महीपातपरागितेषु मुहुर्वहद्वाष्पजलप्लुतेषु ।
चित्रं यदीयैः स्फुरितं यशोभिररातिनारीस्तनदर्पणेषु ॥४८॥

---

१. औदार्यम् । २. स्वेनैवार्थिषु विषये अभिलाषेण ।

ऐतावतैव प्रतिभान्ति नूनमवश्यकर्तव्यतमाः स्वधर्माः ।
दयालुना तेन यदाहवेषु प्रवर्तिता रक्तसरित्प्रबन्धाः ॥४९॥
शठः स तेनामरसङ्गरेषु कष्टं न दृष्टः सुकृती कृतान्तः ।
कुतोऽन्यथा जीवति जीवलोकप्राणापहारानुमितो हताशः ॥५०॥
मखेषु मुख्याहुतिदानपात्रं रणेषु दोर्दण्डविनोदमात्रम् ।
विहाय शक्रं पतितः स यस्य कोपानलस्तस्य यशःशरीरे ॥५१॥
को नाम तस्याभवदाहवेषु कोदण्डचण्डध्वनिसंनिधाने ।
नमस्तदस्मै विजयोदयाय यस्मिन्नहिंसाशिशिरः प्रतापः ॥५२॥
दृढप्रहर्ता त्वमसीति यस्य हासाय जाता हृदि वन्दिवाचः ।
स हि द्विषां जीवितरक्षणार्थी कदाचिदुच्चैर्न चकर्ष चापम् ॥५३॥
यस्मिन्परश्रीपरदारदोषो यस्मिन्परप्राणमहापहारः ।
सत्यं स माधुर्यरुचिस्तमुग्रमाचारमप्यौषधवच्चकार ॥५४॥
रणे गृहीताः परयाभिमानादन्ये तु ये जीवितमुक्तिकामाः ।
तदग्रतो यः करुणार्द्रचेताश्चकार तास्ताः सुकुमारगोष्ठीः ॥५५॥
अन्योन्यमुक्ताः समरेषु वीरैः कस्यापि बाणाः कमपि स्पृशन्तु ।
क्षतैस्तु मुक्तं न रणाङ्गणं यैरकारि वीरव्रतपारणा तैः ॥५६॥
दत्त्वा जयं यस्य गतो विपक्षः शून्ये रणे स स्वयमेव वीरः ।
भग्ने बले यस्तु परास्त्रवज्रप्रपातपीडां सहते स धीरः ॥५७॥
दिवः पतन्ती किल पुष्पवृष्टिरपास्य जेतारमिवान्तरेऽपि ।
व्यावृत्त्य दोर्दण्डचमत्कृतारेर्वीरस्य मूर्धानमलंकरोति ॥५८॥
विमुक्तकेशं द्रवतो बलस्य गलन्मनोहारि यशःप्रसूनम् ।
पृष्ठे द्विपद्भिः किल गृह्यते यद्वीरः परावृत्य तदा च्छिनत्ति ॥५९॥
सद्यो मरुन्मुञ्चति चञ्चलत्वं सद्यो रविः स्थापयते रथं च ।
व्यावृत्त्य वज्रप्रतिमं प्रहर्तुर्वीरस्य विस्फूर्जितदर्शनाय ॥६०॥
भग्नेषु सैन्येषु महाभटानां ये वैरिवीरोन्मुखपादपाताः ।
तानुत्तमाङ्गेन दधाति धात्री तैरेव यस्माद् ध्रियते धरित्री ॥६१॥
भग्ने बले वैरिबलोन्मुखस्य मही महासाहससानुरागा ।
व्याजात्तुरङ्गच्युतचामराणां पथि स्वकेशास्तरणं करोति ॥६२॥

---

१. एतावन्मात्रानुमानेनैव । २. अन्यो यो हि माधुर्यरुचिः स्यात् स उग्रमपि औषधं कदाचित् सेवेत अथवासौ जगतः प्रियकरः । ३. लग्नलोहैः ।

इत्थं परव्यसनसव्यसनस्य नित्यं
नित्यं पराभ्युदयसाभ्युदयस्य तस्य ।
वृद्धं यशस्तरुवरेण तथा यथासौ
नापत्प्रमाणमपि वाक्पतिवाक्यवल्ली ॥६३॥
आपाणिपीडनदिनावधिदीक्षितस्य
यूपाङ्किताखिलनिवेशैर्विशेषरम्याम् ।
रोमाञ्चितामिव महीमथ भुञ्जतोऽस्य
सूनुर्बभूव भुवि बाण इति प्रसिद्धः ॥६४॥

इति भट्टलक्ष्मीधरकृतौ चक्रपाणिविजये महाकाव्ये बलिवर्णनो नाम प्रथम सर्गः ॥१॥

अथ द्वितीयः सर्गः ॥

कर्मैव दैवमित्याहुस्तस्मिन्नात्मनि संस्थिते ।
दैवसाध्यानि वस्तूनि सिद्धान्येव विवेद सः ॥१॥
हरौ कुण्ठतरं तेन तेजनाय मनस्विना ।
प्रक्षिप्तमात्मसत्त्वास्त्रं तपस्तीव्रहुताशने ॥२॥
पितुः परिभवोत्थेन व्यथिते शोकशङ्कुना ।
अहो चित्रं चकारासौ चेतसि स्थाणुधारणाम् ॥३॥
एतावतैव तास्तस्य जाताः प्रियतराः श्रियः ।
यावता तत्परित्यागसातिरेकमभूत्तपः ॥४॥
तावत्पवनलोलाङ्गवल्गिनस्ते तुरगमाः ।
स यावत्तस्य तत्त्यागवेगो नासीत्तपस्यतः ॥५॥
तपःप्रस्तावनाप्यासीत्तस्य दिव्यत्वहेतवे ।
लम्भिता भूरदूरेऽपि येन संबन्धवन्ध्यताम् ॥६॥

---

१. 'निवेशः सैन्यविन्यासे न्यासे रङ्गविवाहयोः' इत्यत्र निवेशो नगरम् । २. भुवि बाणो जात इति संप्रदायः । ३. विषयेऽप्रभविष्णु । ४. श्रीपरित्यागेन । ५. तेषां अश्वानां परित्यागलक्षणो वेगः । ६. झटिति । ७. अत्र भूत्याग उक्तः ।

तेजस्तस्य तदा क्षात्रमात्मन्येव लयं गतम् ।
भूयोऽभ्युदयकामस्य सायंतनरवेरिव ॥७॥

वेद्धमेवोज्झितं तेन च्छत्रं चामरसंयुतम् ।
सुप्तहंसद्वयं पार्श्वे भास्वतेव स्थलाम्बुजम् ॥८॥

इन्दोरिव तदा तस्य करस्पर्शोत्सवं विना ।
प्रम्लानगगनावस्थस्तस्थौ विजयकुञ्जरः ॥९॥

तपः प्रविशता तेन रविणेव महार्णवम् ।
प्रियावक्त्राम्बुजवनं व्यावृत्त्येव न वीक्षितम् ॥१०॥

ये तु दाक्षिण्यशीलस्य पथि तस्य पुरः स्थिताः ।
मलयानिलशीतेन परिरब्धाः क्रमेण[2] ते ॥११॥

विहाय भवनं तेन वने विरचिता स्थितिः ।
प्रियाप्रिये कुतस्तस्य यस्य मानोन्नतं मनः ॥१२॥

श्रितमुन्नतये तेन हिमवत्कन्दरोदरम् ।
देवराजपदप्राप्तौ तत्पित्रेव रसातलम् ॥१३॥

धौताङ्गरागः स बभौ कृतभस्मविलेपनः ।
संध्यारुणिमपर्यन्ते प्रभापीनः शशी यथा ॥१४॥

दधत्तदाननं रेजे स्फाटिके कर्णकुण्डले ।
गुरुभार्गवयोरन्तः संपूर्ण इव चन्द्रमाः ॥१५॥

स रेजे बद्धपर्यङ्को विशालरचिताञ्जलिः ।
विकटांशतटाभोगस्त्रिमालिक इवाचलः ॥१६॥

गृह्यमाणगुरुश्वासग्रासाकृष्टलता नताः ।
पर्यन्तवर्तिनस्तस्य प्रणेमुरिव पादपाः ॥१७॥

योगर्द्धिविषये तेन निपीतपवने वने ।
अचञ्चलतया तस्थुः समाधिस्था इव द्रुमाः ॥१८॥

ब्रह्मविद्यालतापुष्पमनुष्ठानतरोः फलम् ।
स दध्यौ देवमीशानं संसारतुषतण्डुलम् ॥१९॥

---

१. संकीलितमेव । २. कल्पेन । 'क्रमः कल्पांह्रिशक्तिषु,' परिपाटयां तपस्विनां सङ्केक्रमा उक्ताः सन्ति ।

इत्थं परव्यसनसव्यसनस्य नित्यं
नित्यं पराभ्युदयसाभ्युदयस्य तस्य ।
वृद्धं यशस्तरुवरेण तथा यथासौ
नापत्प्रमाणमपि वाक्पतिवाक्यवल्ली ॥६३॥

आपाणिपीडनदिनावधिदीक्षितस्य
यूपाङ्किताखिलनिवेश[1]विशेषरम्याम् ।
रोमाञ्चितामिव महीमथ भुञ्जतोऽस्य
सूनुर्बभूव भुवि[2] बाण इति प्रसिद्धः ॥६४॥

इति भट्टलक्ष्मीधरकृतौ चक्रपाणिविजये महाकाव्ये बलिवर्णनो नाम प्रथम सर्गः ॥१॥

अथ द्वितीयः सर्गः ॥

कर्मैव दैवमित्याहुस्तस्मिन्नात्मनि संस्थिते ।
दैवसाध्यानि वस्तूनि सिद्धान्येव विवेद सः ॥१॥

हरौ कुण्ठतरं तेन तेजनाय मनस्विना ।
प्रक्षिप्तमात्मसत्त्वास्त्रं तपस्तीव्रहुताशने ॥२॥

पितुः परिभवोत्थेन व्यथिते शोकशङ्कुना ।
अहो चित्रं चकारासौ चेतसि स्थाणुधारणाम् ॥३॥

एतावतैव तास्तस्य जाताः प्रियतराः श्रियः ।
यावता तत्परित्यागसातिरेकमभूत्तपः ॥४॥

तावत्पवनलोलाङ्गवल्गिनस्ते तुरगमाः ।
स यावत्तस्य तत्त्यागवेगो नासीत्तपस्यतः ॥५॥

तपःप्रस्तावनाप्यासीत्तस्य दिव्यत्वहेतवे ।
लम्भिता भूरदूरेऽपि येन संबन्धवन्ध्यताम् ॥६॥

---

१. 'निवेशः सैन्यविन्यासे न्यासे रङ्गविवाहयोः' इत्यत्र निवेशो नगरम् । २. भुवि बाणो जात इति संप्रदायः । ३. विषयेऽप्रभविष्णु । ४. श्रीपरित्यागेन । ५. तेषां अश्वानां परित्यागलक्षणो वेगः । ६. झटिति । ७. अत्र भूत्याग उक्तः ।

तेजस्तस्य तदा क्षात्रमात्मन्येव लयं गतम् ।
भूयोऽभ्युदयकामस्य सायंतनरवेरिव ॥७॥

बद्धमेवोज्झितं तेन च्छत्रं चामरसंयुतम् ।
सुप्तहंसद्वयं पार्श्वे भास्वतेव स्थलाम्बुजम् ॥८॥

इन्दोरिव तदा तस्य करस्पर्शोत्सवं विना ।
प्रम्लानगगनावस्थस्तस्थौ विजयकुञ्जरः ॥९॥

तपः प्रविशता तेन रविणेव महार्णवम् ।
प्रियावक्त्राम्बुजवनं व्यावृत्त्यैव न वीक्षितम् ॥१०॥

ये तु दाक्षिण्यशीलस्य पथि तस्य पुरः स्थिताः ।
मलयानिलशीतेन परिरब्धाः क्रमेण² ते ॥११॥

विहाय भवनं तेन वने विरचिता स्थितिः ।
प्रियाप्रिये कुतस्तस्य यस्य मानोन्नतं मनः ॥१२॥

श्रितमुन्नतये तेन हिमवत्कन्दरोदरम् ।
देवराजपदप्राप्तौ तत्पित्रेव रसातलम् ॥१३॥

धौताङ्गरागः स बभौ कृतभस्मविलेपनः ।
संध्यारुणिमपर्यन्ते प्रभापीनः शशी यथा ॥१४॥

दधत्तदाननं रेजे स्फाटिके कर्णकुण्डले ।
गुरुभार्गवयोरन्तः संपूर्ण इव चन्द्रमाः ॥१५॥

स रेजे बद्धपर्यङ्को विशालरचिताञ्जलिः ।
विकटांशतटाभोगस्त्रिमालिक इवाचलः ॥१६॥

गृह्यमाणगुरुश्वासग्रासाकृष्टलता नताः ।
पर्यन्तवर्तिनस्तस्य प्रणेमुरिव पादपाः ॥१७॥

योगर्द्धिविषये तेन निपीतपवने वने ।
अचञ्चलतया तस्थुः समाधिस्था इव द्रुमाः ॥१८॥

ह्यविद्यालतापुष्पमनुष्ठानतरोः फलम् ।
स दध्यौ देवमीशानं संसारतुषतण्डुलम् ॥१९॥

---

१. संकीलितमेव । २. कल्पेन । 'क्रमः कल्पांह्रिशक्तिषु,' परिपाट्यां तपस्विनां सङ्केक्रमा उक्ताः सन्ति ।

उद्गते परमानन्दस्यन्दिनीन्दाविवात्मनि ।
न विघ्नः क्व तदा तस्य गतमिन्द्रियतस्करैः ॥२०॥

अन्तः परतरं ज्योतिः [1]प्रत्यगेतस्य पश्यतोः ।
नेत्रनीलाब्जयोरासीद्बहिर्नीलनिभा प्रभा ॥२१॥

ध्याननिष्पन्दितस्यान्तर्मनो दुर्धरभोगिनः ।
दृष्टो मणिरिव स्वच्छः स्वेच्छं तेन महेश्वरः ॥२२॥

ध्यानान्ते मील[2]नैश्छद्मप्रसुप्ते परमेश्वरे ।
यामिकैरिव बाणस्य बुद्धं तत्क्षणमिन्द्रियैः ॥२३॥

अथ भक्तिमयी तेन नानावर्णविभूषिता ।
मालेव गुणसंपन्ना पुण्या विरचिता स्तुतिः ॥२४॥

स्तोतुमादिशति श्रद्धा जिह्वा नैवाध्यवस्यति ।
इति वागीश्वर व्यग्रा वाचः कण्ठे लुठन्ति मे ॥२५॥

युक्तं यदज्ञ एवास्मि स्तौमि त्वां यदशङ्कितः ।
ज्ञातारो हि न वक्तारस्त्वयि वाचामगोचरे ॥२६॥

परात्परतरं देवमवाक्करवचाः स्तुवन् ।
ध्रुवं धुरि करिष्यामि स्वमसंगतभाषिणाम् ॥२७॥

न वाचस्त्वां विना वाच्यं न च साक्षात्तयोच्यसे ।
तुला तुलयति स्वर्णं न तु स्वर्णधराधरम् ॥२८॥

विश्वात्मा न च नाथ त्वं गोचरे विश्वदृश्वनाम् ।
अहो ते निष्प्रपञ्चस्य प्रपञ्चः कोऽयमद्भुतः ॥२९॥

त्वमशे[3]षमिति स्तोत्रं त्वयि प्रत्युत लाघवम् ।
तद्धि ते कियती मात्रा यदिच्छामात्रनिर्मितम् ॥३०॥

अथवा विश्वहेतुस्त्वमिति वार्तैव केवलम् ।
तस्य ते मूर्तयो विश्वं यस्य कर्ता न विद्यते ॥३१॥

न च सर्वमयोऽसीति विश्वमूर्ते तव स्तुतिः ।
जलराशिरसीत्युक्ते का स्यादर्णववर्णना ॥३२॥

१. प्रतीपं विलोकयतोः । २. ध्यानस्यैव मीलनं संकोचः । ३. सचराचरं त्रिभुवनं भवानिति ।

भवानेव यदा विश्वं तदा विश्वावलोकिनः ।
आत्मदर्शितमात्रेण कीदृक्ते विश्वदर्शिता ॥३३॥
किमन्यदात्मनो ज्ञातं किं व्याप्तं किं त्वया कृतम् ।
एवमेवासि सर्वज्ञः सर्वगः सर्वकारणम् ॥३४॥
यदम्बरमिति ख्यातं देहभागस्तवाष्टमः ।
तद्गुणो[1] गीः कथं नाथ वक्ष्यति त्वामशेषतः ॥३५॥
सा विधेरुक्तिरेकैव या विभो प्रसृता त्वयि ।
अनन्यत्राहिनीक्षुण्णे स्वर्धुनीव नभस्तले ॥३६॥
यत्रास्ते भारती धातुः संकुचत्येव तत्र नः ।
तवैवेन्दुकलाकान्ते पद्ममालेव मूर्धनि ॥३७॥
सेयमर्थान्न पश्यन्ती प्रस्खलन्ती पदे पदे ।
तव स्तुतिपथे वाणी श्रद्धयान्धेव नीयते ॥३८॥
विना सुवर्णसंसिद्ध्या कथं वा स्तुतिकण्ठिका ।
प्लवते वध्यमाना हि वाक्पारदमयीव मे ॥३९॥
अथवा प्लवमानापि कुरुक्षेत्र इव त्वयि ।
भविष्यति जगन्नाथ तीर्थमेव सरस्वती ॥४०॥
तस्य मे कृतमेताभिः कविंलङ्गिमभङ्गिभिः ।
भक्त्या यदभिधास्यामि कृपया तन्निशम्यताम् ॥४१॥
कस्य वा नाथ सामर्थ्यं वाचा त्वद्गुणकीर्तने ।
केन वा लब्धमङ्गुल्या तारागणनगौरवम् ॥४२॥
अहो ब्रह्मगिरां पारे[2] मद्गिरां गोचरे भवान् ।
जटाग्रपीतगङ्गोऽपि स्नप्यसे चुलकाम्भसा ॥४३॥
उपमा यत्र नास्त्येव यत्र जातिर्न विद्यते ।
निर्गुणो निरलंकारः त्वमिव त्वयि मे स्तवः ॥४४॥
संसारसागरोत्तारपोतस्त्वमसि देहिनाम् ।
निर्जीव इव यस्येन्दुः कृशः शिरसि तिष्ठति ॥४५॥
संसारजलधेः पारे यत्तत्तीर्थमनामयम् ।
त्वमेकः परमानन्दसत्री तत्र महेश्वरः ॥४६॥

---

१. तस्य देहभागरूपस्य नभसो गुणो वाणी । २. प्रान्ते । 'पारं प्रान्ते परतटे' ।

विदुस्तद्दिनमुत्कृष्टं यत्र त्वमधिगम्यसे ।
अथ च त्वयि यातानां प्रत्यावृत्तिर्न विद्यते ॥४७॥
युक्तं यत्कर्म कुर्वाणा लभन्ते भवतः फलम् ।
चित्रं वितरसि श्रेयो यदकर्मकृतामपि ॥४८॥
इदं नु तव चारित्रं महेश्वर महाद्भुतम् ।
यत्क्रुद्धोऽपि[1] प्रसन्नोऽपि न किंचित्कुरुषे नरम् ॥४९॥
एकस्माद्भवतः[2] स्थाणोश्चित्रं यदवचिन्वते ।
अनेकविधरूपाणि फलानि कृतिनो जनाः ॥५०॥
इत्यादि वदतस्तस्य नीलग्रीवो वृषध्वजः ।
जटाधरः पुरस्तस्थौ[3] कपाली चन्द्रशेखरः ॥५१॥
तं दृष्ट्वापि चमत्कारो नासीत्तस्य तपस्विनः ।
तदेकध्यायिना तेन तादृगेव हि दृश्यते ॥५२॥
आर्जवेन तु तेनास्य प्रससाद परं हरः ।
भाव एवोपचाराय चतुरस्य पुरः प्रभोः ॥५३॥
अथैतां वत्सलो वाचमुवाच परमेश्वरः ।
वृणु बाण प्रसन्नोऽस्मि वरं ब्रह्मादिदुर्लभम् ॥५४॥
बाणस्तु स्वामिसंमानपरितोषभरादिव ।
प्रणम्य[4] प्राञ्जलिः प्राह जानुस्पृष्टमहीतलः ॥५५॥
स्वादितत्वत्सपर्यस्य पर्याप्तमपरैर्वरैः ।
स्वाधीनामृतपानस्य पानीयेभ्यः कुतः स्पृहा ॥५६॥
लक्ष्मीकामं रवेः पद्ममनुनक्तं निमीलति ।
सेवाकामस्तु दिवसस्तेनैव सह नन्दति ॥५७॥
प्रत्यभाषत देवोऽपि बाणं गीर्वाणवन्दितः ।
दन्तपङ्क्तिप्रभाधौतश्वासलुब्धमधुव्रतः ॥५८॥
प्रीतः पुत्र तवानेन वचसास्मि विशेषतः ।
के हि भोगैरनाकृष्टस्वामिसांनिध्यबुद्धयः ॥५९॥

---

१. क्रुद्धः सन् न किंचित् अकिंचनः प्रसन्नस्तु देहाभावेन मुक्तिप्रस्थितत्वात् ज्योतिर्मयं विदधामि । २. शिवात् कीलकात् । ३. 'अथोरगफणामाली'ति पाठान्तरम् । ४. भारेणैव प्रणामितः अत्यर्थं नामितः ।

अपि तुङ्गतरस्तात त्वरस्तनुतरस्त्वयि ।
अतो बत विलक्षस्य मैत्रीमात्रं प्रयच्छ मे ॥६०॥
श्रुत्वा तदपराधीव बभाषे बलिनन्दनः ।
भर्तुरत्यादरव्रीडापीडागद्गदया गिरा ॥६१॥
अवाच्यमिदमीशानामश्रव्यमुपजीविनाम् ।
त्वं हि नः शासिता नाथ न तु नाशयिता मतः ॥६२॥

इत्युक्ते प्रीतिविस्फारलोचनोऽस्य त्रिलोचनः ।
प्रतिपेदेतरां मैत्रीमत्रिनन्दनशेखरः ॥६३॥
तमथ प्रमथानीकनायकोऽपि विनायकः ।
ववन्दे हरचित्तज्ञनन्दिप्रथमवन्दितम् ॥६४॥
ततो मधुरताराभिरुदारगणगीतिभिः ।
आरुरोह समं स्वामी बलिमनुसखः स खम् ॥६५॥
बभौ नभसि विस्फारप्रभापटलपीवरः ।
गणैस्तारागणोदारैश्चन्द्रवच्चन्द्रशेखरः ॥६६॥

अथ मन्दाकिनीसङ्गशीतानलसखाः सुराः ।
प्रणिपेतुः पुरोमुक्तमन्दारकुसुमोत्कराः ॥६७॥
कज्जलश्यामलं व्योम विमानैः कनकोज्ज्वलैः ।
बभार कुसुमच्छन्नकर्णिकारवनश्रियम् ॥६८॥
अपारजवसंरोधक्रोधिनस्तत्ककुद्मतः ।
अदृश्यन्त तले ताराः स्रस्तस्वेदलवा इव ॥६९॥
आशङ्क्य कृत्तिका लोकात् स्रस्तामुत्तंसमञ्जरीम् ।
हासयन्ती हरं भूयः श्रोत्रं पस्पर्श पार्वती ॥७०॥

अहरच्चन्द्रचूडस्य चक्षुषी मुनिमण्डलम् ।
प्रयाणशिथिलं देव्याः पुष्पदामेव विच्युतम् ॥७१॥
धिक्तदुच्चैर्गतं शम्भोररुन्धत्या समं नयत् ।
दृष्टावरणवृत्तान्तस्मृतिस्मेरमुखी प्रिया ॥७२॥
यत्तले तस्य विश्वानि ध्रुवस्य तलमेव तत् ।
यत्तु जातः शिवो मूर्ध्नि त्रिलोकीमूर्ध्नि तेन सः ॥७३॥

---

१. 'कृत्तिकादर्शनोत्पन्नच्युतमञ्जरिशङ्कया' इति पाठान्तरम् ।

अथ हेमालयोत्थानखनिक्षीणसुराचलम् ।
ददृशे पुरमीशेन शोणितोपपदं पुरः ॥७४॥
ज्वलदग्निमयोत्तुङ्गप्राकारव्यपदेशतः ।
पुरुहूतपुरामर्षज्वालाभिरिव भास्वरम् ॥७५॥
तर्जनीचलचेष्टाभिः पताकाभिरितस्ततः ।
कुर्वाणमिव गीर्वाणलोकलावण्यविप्लवम् ॥७६॥
ध्वजवंशलताच्छेदैरिन्दोरिव विदारितात् ।
श्रुतसान्द्रसुधासारैः श्वेतमानसुरालयम् ॥७७॥
पुनरुद्वर्तयन्तीव स्रोतःस्नाता नितम्बिनीः ।
हेमाम्भोजरजःपुञ्जपिञ्जरा यत्र वायवः ॥७८॥
श्वासपानपरैर्भृङ्गैरास्यसंगमशिक्षितम् ।
सार्धं गन्धर्वकन्याभिः स्पर्धया यत्र गीयते ॥७९॥
तत्राभिषिच्य बलिनन्दनमिन्दुमौलि-
लीलापदस्थितमहेन्द्रमहिम्नि राज्ये ।
तत्प्रार्थनानियमितः पुनरात्मनैवं
कैलासवासमपहाय तदेव भेजे ॥८०॥

इति भट्टलक्ष्मीधरकृतौ चक्रपाणिविजये महाकाव्ये हरप्रसादनो नाम द्वितीयः सर्गः ॥२॥

अथ तृतीयः सर्गः ॥

अथोद्धृते तस्य जयातिपत्रे छत्रेषु सर्वत्र निमीलितेषु ।
छायार्थिनीव प्रतिपक्षलक्ष्मीरुत्सङ्गयामास तदङ्गमङ्गैः ॥१॥
ध्रुवं स तत्र स्थित एव बाणस्तीक्ष्णः सुराणां हृदये प्रविष्टः ।
अशक्यमुद्धर्तुमभूत्तदन्तः कुतोऽन्यथा शल्यमनन्यतुल्यम् ॥२॥
आसाद्य यस्यैकमनेकसंख्यैः प्रक्षिप्तशेषं शरमाजिलोलैः ।
हस्तैर्मिथः प्रस्तुतशून्यहस्तैरस्ताः समस्ताः परवीरवार्ताः ॥३॥

---

१. 'विश्वजयातिपत्रे' इति पाठान्तरम् । २. बाणस्य सहस्रपाणित्वात् । ३. 'प्रस्तुतहस्तकैस्तै–' इति पाठान्तरम् ।

कृपाणपातक्षतवारणेन्द्रकुम्भोत्थमुक्ताप्रकरच्छलेन ।
प्रदत्तपुष्पाञ्जलिपेशलेन येनार्घितां[1]ः संगररङ्गदुर्गाः ॥४॥
क्षपासु यः खड्गसहायबाहुराहूय हत्वा च विपक्षवीरान् ।
तच्छोणितपीतपिशाचवन्दिवृन्दै[ः] स्तुतो मन्दिरमाजगाम ॥५॥
अनेकशः श्यामनिशीथिनीषु द्वारार्गलानिर्दलनक्षमो यः ।
प्रविश्य वीरः सदनोदरेषु द्विषद्वरान् जागरयांचकार ॥६॥
निहत्य तानुद्धतबाहुदण्डकण्डूतिचण्डानथ निर्जगाम ।
पथातिथीभूतभटास्थिभेदात् किरत्कृपाणज्वलनोज्ज्वलेन ॥७॥
दिग्वारणस्तम्भशिखाप्रलग्नादधःस्थिता यस्य यशोवितानात् ।
अहो महच्चित्रमिदं यदेके विच्छायभावं रिपवः प्रयाताः ॥८॥
यद्वा तदीयासु यशःप्रतापवार्तासु कोऽस्माकमिहाधिकारः ।
न जातु जातं हि समानकालमादित्यचन्द्रातपदर्शनं[2] नः ॥९॥
अथास्य दैवादथवाधिपत्यादाहोस्विदीशानबलावलेपात् ।
न ज्ञायते केन समं किमर्थं किंहेतुरासीत्समदाभिलाषैः ॥१०॥
[4]अपीन्द्रियग्रामजुगुप्सितानामप्यन्तरात्मप्रतिषेधितानाम् ।
प्रयत्नवध्यो वधमिच्छतीति विधातुरन्तःपरमोत्सवानाम् ॥११॥
अप्रक्रमे नर्तितनारदानामपर्वणि प्रीणितपूतनानाम् ।
अकाण्डलोकत्रयविद्रवाणामकालदिक्पालपलायनानाम् ॥१२॥
अमर्षरक्षःकुलमन्दिराणामधर्मतामिश्रमहानिशानाम् ।
अस्थानवीरव्ययदुर्भगाणामहेतुहिंसारसनीरसानाम् ॥१३॥
स्पर्धापिशाचीमदविभ्रमाणामशान्तिसर्पीविषविक्रियाणाम् ।
अज्ञानतन्द्रीभ्रमभापितानामनीतिकृत्या किल किंचितानाम् ॥१४॥
निर्बीजकोपाङ्कुरकन्दलानां निर्मूलदर्पद्रुमपल्लवानाम् ।
न जातु दैत्यस्य विरेमुरन्तर्महोर्मयः संगरदोहदानाम् ॥१५॥

पञ्चभिः कुलकम् ॥

कदाचिदेतस्य तमेव भावं पुपोष पीयूषमरीचिमौलिः ।
आगामिसंग्रामनिमित्तभूतभाविघ्नजध्वंसनिवेदनेन ॥१६॥

---

१. कृतार्घाः । २. '°चन्द्रोदयदर्शनम्' इति पाठः । ३. बाणोऽयं दुर्बोधो वधमभिलषतीति धातुः प्रमोदः । ४. इतः पञ्चभिः कुलकम् ।

स तानि मानी बलिराजसूनुरुक्तप्रसादैः प्रणतेन मूर्ध्ना ।
प्रीतः प्रतीयेष समीहितार्थसमर्थनानीश्वरभाषितानि ॥१७॥
प्रालेयशैलादिव चन्द्रमौलेरकालसंरब्धपयोधरश्रीः ।
मदाश्रुवर्षी स जगाम गर्जन् गृहाणि तत्कालकृतोत्सवानि ॥१८॥
अत्रान्तरे केशकलापकल्पं छित्वा मयूरध्वजमञ्जनाभम् ।
मुण्डीकृतेवासुरराजलक्ष्मीरकाण्डमुक्ताशनिना मघोना ॥१९॥
अथास्य लोकत्रितयाभिरामामपत्यसर्वस्वमुषेति नाम ।
निगूढमन्तर्वरचर्चनाय चकार चैतन्यमुमार्चनाय ॥२०॥
अन्यैव सा श्रीरपरैव रेखा लावण्यमङ्गेषु तदन्यदेव ।
तत्कन्यकावस्तु कृतं किमन्यदन्येन मन्ये निपुणेन धात्रा ॥२१॥
अन्योन्यलावण्यगुणप्रकर्षरोषादिवोच्चैरतिरेकरक्ताः ।
तथा यथा रज्यत एव कामं कामोऽपि तासां चरणाङ्गुलीनाम् ॥२२॥
भ्रूश्याममल्लातकपङ्कलेखां संक्रान्तकाञ्चीशितिरत्नताराम् ।
मुखेन्दुबिम्बोदयदर्शनाय जाने दधानौ नखनेत्रमालाम् ॥२३॥
समौ समानोभयपार्श्वरेखानिक्षेपनीरन्ध्रतलप्रचारौ ।
संचारवीथ्या सममेव मन्ये विनिर्मितौ तच्चरणौ विधात्रा ॥२४॥ युग्मम् ॥
स्वयं त्रिलोकीविजयक्षमाय तस्या नितम्बाय मनोभवेन ।
जङ्घाप्रकाण्डद्वितयच्छलेन समर्पितं काञ्चनतूणयुग्मम् ॥२५॥
नितम्बशैले चरतः सलीलं यौ यौवनानङ्गमतंगजेन्द्रौ ।
तदीयहस्तद्वितयानुकारं बभार या पीवरमूरुयुग्मम् ॥२६॥
गम्भीरनाभीह्रदसंनिधाने रराज तस्या नवरोमराजिः ।
मुखेन्दुभीतस्तनचक्रवाकद्वयोज्झिता शैवलवल्लरीव ॥२७॥
अभ्यासजाताङ्गुलिराजिरम्यं वलित्रयं मध्यगतं वहन्ती ।
अदृश्यतासौ मकरध्वजस्य संचारिणी चापलतेव भूमौ ॥२८॥
नितम्बबिम्बस्तनतुङ्गपार्श्वा मध्येन च क्षामपनोरमेण ।
रराज कामस्य महोपधाना शय्येव तस्या मसृणोदरश्रीः ॥२९॥

---

१. प्रणतेन शिरसा महाप्रसाद इति उक्तं येन स तथा । २. प्रत्यहं यो धनुषोऽभ्यासस्तेन याता या अङ्गुलिराजयो लेखास्तद्वत रम्यम् । ३. 'क्षामतरेण तस्याः । दत्तोपधानद्वितया स्मरस्य शय्येव रेजे मसृणोदरश्रीः' इति पाठान्तरम् ।

हृदि प्रतिष्ठापितयोस्तदीये रतेरनङ्गस्य च यौवनेन ।
अकारि तुङ्गस्तनविभ्रमेण सौवर्णमुच्चैः सुरसद्मयुग्मम् ॥३०॥
अधोमुखारक्तसरोरुहेण लभेत सख्यं यदि रश्मिरिन्दोः ।
तेनोपमीयेत तदीयहस्तप्रसक्ततद्बाहुलतास्वरूपम् ॥३१॥
स्मितस्य तस्याः [1]पुनरुक्तरागरम्यौष्ठपृष्ठे लुठितस्य शोभाम् ।
लभेत वा धाम न वा सुधांशोर्लब्ध्वापि रक्तोत्पलपत्रमैत्रीम् ॥३२॥
श्रुत्वा तदीयाननिर्गतं तद्वचः सचेताश्च जनो जडश्च ।
निनिन्द सद्यः कमलोदरेषु द्विरेफमालाकलशब्दितानि ॥३३॥
कुरङ्गनाभीतिलकाभिरामं भ्रूमूलमासाद्य तदीयनासा ।
[2]एकोन्नतव्यानतपत्रकान्ता कन्दर्पचापेक्षुलतेव रेजे ॥३४॥
तदीयनेत्रद्वितयस्य जाने जाता जगद्भिभ्यत एव वृद्धिः ।
यत्कामिनर्मप्रसभप्रवेशप्रसक्तरक्तादिव शोणकोणम् ॥३५॥
ते लोचने वीक्ष्य सरोपलज्जमनङ्गयन्त्या नयने स्वकीये ।
तन्मूर्ध्नि रत्या कबरीनिभेन रिक्तीकृतं भाजनमञ्जनानाम् ॥३६॥
उल्लिख्य कृष्णेक्षुधनुर्लतायाः स्मरेण तद्दर्शनदुर्बलेन ।
अस्ताः प्रकोपादिव मूर्ध्नि तस्यास्त्वक्चूर्णभङ्गाः कुरलच्छलेन ॥३७॥
अराजत स्तोकविनिर्मितेन सा कुङ्कुमोद्वर्तनपिञ्जरिम्णा ।
प्रातः परागासवपङ्कभाजः समुत्थिता श्रीरिव पद्मतल्पात् ॥३८॥
विचित्रवर्णे परिधाय वस्त्रे रराज राजीवविलोचनासौ ।
नानाप्रसूनालयवर्तमाना संकल्पयोनेः कुलदेवतेव ॥३९॥
तदीव(? य)पादाङ्गुलिपल्लवेषु न्यस्तानि मुक्तामणिमण्डनानि ।
उद्गच्छदच्छारुणिमोपधानादम्लानमाणिक्यनिभान्यभूवन् ॥४०॥
मुक्तामयान्याचरणार्पितानि प्रालम्बसूत्राणि बभौ वहन्ती ।
मन्दाकिनीप्रस्रवणाच्छवारिधाराशतानीव तटी सुराद्रेः ॥४१॥
[3]जिते जगज्जेतरि पुष्पकेतुकान्तारतिस्थानमनोहरिम्णि ।
बद्धस्तया काञ्चिलतापदेशान्नितम्बबिम्बोपरि वीरपट्टः ॥४२॥
निरन्तरस्य स्तनमण्डलस्य मुक्तासरेणो[ः] परिपुञ्जितेन ।
रराज नीरन्ध्ररथाङ्गयुग्मनिरुद्धफेनप्रसरेव गङ्गा ॥४३॥

---

१. अधिकम् । २. तिलकरूपमेकं पत्रमुन्नतं भ्रूयुगरूपं तु पत्रद्वयमानतम् ।
३. कामक्रीजघनमनोहरत्वे जिते सति ।

बभार वक्त्रं श्रवणेन्द्रनीलनिर्यत्प्रभामण्डलमध्यवर्ति ।
विशालपत्रद्वितयान्तराले व्याकोशमेकं नलिनीव पद्मम् ॥४४॥
स्निग्धाञ्जनश्यामलकेशपाशकरम्बितैः सा ददृशे प्रसूनैः ।
पयोधरान्तर्दरदृश्यमानचन्द्रोदया पर्वविभावरीव[2] ॥४५॥
अदृश्यतासावसितातपत्रपर्यन्तचञ्चच्चमरद्वयेन ।
सरोजिनीपत्रतलप्रखेलहंसद्वयान्तर्जलदेवतेव ॥४६॥
संभाव्यमप्युत्पलिनीम[3]निद्रां कर्तुं यदस्या वदनेन्दुबिम्बम् ।
तत्कौमुदीपानपराश्चकोरीरमूर्खपक्षे विदधुर्वयस्याः ॥४७॥
अथान्तरत्यन्तसमुत्सुकापि बालप्रवालाधिकसौकुमार्यम् ।
चकार सा भङ्गभियेव तन्वी शनैः शनैरध्वनि पादयुग्मम् ॥४८॥
मरालशब्दाधिककोमलेन जितानि तन्नूपुरशिञ्जितेन ।
दग्धस्मरोज्जीवनहर्षनृत्तवृत्तानि काञ्चीरणितानि रत्याः ॥४९॥
स्थानेऽपि खिन्नेव कथंकथंचिन्नितम्बभारव्यथिता जगाम ।
पदे पदे स्पर्शवशीकृतेन धृतेव मुग्धा मणिकुट्टिमेन ॥५०॥
रक्तारविन्दच्छदकोमलाभिः पदे पदे स्निग्धनखप्रभाभिः ।
उपक्रमे[4]ऽपि क्रमिणां गतानामनङ्गदावाग्निमिवोद्गिरन्ती ॥५१॥
सा वीचिभिः स्वर्गतरङ्गिणीव समुद्रवेलेव मणिप्रभाभिः ।
रराज ताराभिरिवेन्दुमूर्तिरनुप्रयाता सहचारिणीभिः ॥५२॥
मृणालिकाखण्डविपाण्डुराभिः कर्पूरवल्लीदलवीटिकाभिः ।
सा लोभयामास सहासखेलं कृष्टास्तुलाकोटिरवेण हंसीः ॥५३॥
अथाग्रिपुञ्जप्रतिमारविन्दप्रान्तभ्रमद्भृङ्गवधूवरेषु ।
जगाम साक्षादिव वीक्षमाणा विवाहमुद्यानसरिज्जलेषु ॥५४॥
सा माधवीनां स्तवकाननानि चूतैः प्रवालाधरचुम्बितानि ।
निरीक्षमाणा निभृतं नतभ्रूरदृश्यत स्मेरमुखं सखीभिः ॥५५॥
जगाम वामेन तया करेण कण्डूयमानोऽपि कुरङ्गपोतः ।
प्रदक्षिणं दक्षिणकङ्कणस्थनीलाश्मरश्मौ कृतशष्पशङ्कः ॥५६॥
निसर्गशोभासुभगस्य तस्य विभूषणं दूषणमाकलय्य ।
वामस्य बाहोः स्फुरितच्छलेन रराज केयूरमिव क्षिपन्ती ॥५७॥

---

१. 'रवा' इत्यपि पाठः । २. पूर्णिमा—रात्रिः । ३. नलिनीमपि । ४. आरम्भेऽपि ।

पराजितस्यापि विकासभाजः कोपादिवोत्तंससरोरुहस्य ।
स्पन्दापदेशात् तरलायताक्ष्याः प्रकम्पितं वामविलोचनेन ॥५८॥
उद्यानपालीकलिते पुरस्तादेलालतासेचनपूर्णकुम्भे ।
माङ्गल्यमस्तं वनदेवताभिस्तद्दर्शनाय द्रुमतः प्रवालम् ॥५९॥
इत्थं निजेच्छासदृशैर्निमित्तैरुत्कण्ठितान्तःकरणा कुमारी ।
अनध्वखिन्नेव समाससाद रुद्रालयद्वारमुदारशोभम् ॥६०॥
विविधमणिविचित्रे नन्दिना सादरेण
द्रुततरमथ दूरोत्सारिते हेमवेत्रे ।
अनतिचिरनिरस्ते वारिवाहेन चापे
शरदिव विमलाङ्गी सा विरेजे विशन्ती ॥६१॥

इति भट्टलक्ष्मीधरकृतौ चक्रपाणिविजये महाकाव्ये उषावर्णनो नाम तृतीयः सर्गः ॥३॥

अथ चतुर्थः सर्गः ॥

अनन्तरं सावसरोचितेन तस्याः प्रवेशे कलजल्पितेन ।
मधुश्रियः कोकिलकामिनीव चकार शोभातिशयं वयस्या ॥१॥
अस्मिन्पुरोवर्तिनि पारिजाते प्रसीद विश्रामय देहि दृष्टिम् ।
यस्तावकश्वाससुधासुगन्धिरन्धैरिवाधिश्रियते द्विरेफैः ॥२॥
अयुक्तमेकं सखि सद्ममासां गौरीगृहाशोकतरोर्लतानाम् ।
वहन्ति यास्ते मृदुभिः प्रवालैः सहस्तबाहुद्वयसाम्यगर्वम्[1] ॥३॥
सखीमुखेन्दुप्रतिबिम्बचित्रे मुक्ताशिलाकुट्टिमभूमिभागे ।
विराजसे सुन्दरि संचरन्ती सरोजरम्ये सरसीव लक्ष्मीः ॥४॥
दत्वा दृशं मण्डपरत्नभित्तौ मुधैव मुग्धे किमु विस्मयस्ते ।
इयं हि लोकत्रितयाभिरामा त्वमेव तन्वि प्रतिबिम्बितासि ॥५॥
पश्येदमुच्चैर्भवनच्छलेन विभोर्वसत्यै स्वमिवात्तमूर्तिम् ।
स्थितं यदाक्रान्तदिगन्तरेण विलङ्घ्य धात्रीमिव विस्तरेण ॥६॥

---

१. 'रूपगर्वम्' इति पाठान्तरम् ।

यथात्मभूमिस्थितलोकपालं त्रिलोकनिर्माणमिव द्वितीयम् ।
अनेकसर्गाधिगतात्मशक्तिः स एव मन्ये विदधे यदीशः ॥७॥

नीलाश्मभूमौ मणिमण्डपस्य तस्मिन्नपि श्यामलरत्नभूमेः ।
परस्परेण प्रतिबिम्बितत्वादेकास्पदेऽपि द्वितयानुकारम् ॥८॥

आलोक्यमानप्रकटानुबिम्बैः[२] सेवागतैः सप्तभिरेव लोकैः ।
प्रकाशिताशेषजगत्स्वरूपं पार्थोपरोधादिव विश्वरूपम् ॥९॥

समं सखी मञ्जुमरालिकाभिस्तद्रत्नसोपानमलंचकार ।
मन्दानिलोच्चावचवीचिरम्यं सा मानसं हेमसरोजिनीव ॥१०॥

जाम्बूनदस्तम्भविमुक्तमुक्ताप्रालम्बमालम्ब्य तदत्ययासीत् ।
मेरोस्त्रिमार्गाभरकर्षणेन कीर्तिर्यथा व्योम भगीरथस्य ॥११॥

आनम्यतैव द्विरदाननस्य सा पङ्कजस्वादुमुखी सखीभिः ।
नीता तु दूरेण मदार्द्रगण्डद्विरेफमालाचकिता कुमारी ॥१२॥

कूपोदरान्तर्दरदृश्यमानभास्वत्प्रतिच्छन्दगभीरनेत्रम् ।
भीरुस्तिरश्चीनसखीसकाशाच्चण्डीमुखं द्रष्टुमुषा न लेभे ॥१३॥

ददर्श सा तल्लयचित्तवृत्तिनियन्त्रितैर्लोचनचक्रवालैः ।
बालेन्दुभीतैः कमलैरिवेन्द्रमापादयन्तं हरपादपूजाम् ॥१४॥

गौरीपतेर्दर्शनपुण्यवारिप्रक्षालनक्षीणमलैरिवाङ्गैः ।
ददर्श चासौ बहुमानपूर्वमत्यच्छसौम्याकृतिमम्बुनाथम् ॥१५॥

दृष्टः कुबेरो ददृशे स यस्य सीमन्तमुक्तामहसां प्ररोहः ।
नैवाधिकद्वारबहिःप्रसर्पदन्तःस्थितस्थाणुविधोरिवार्चिः ॥१६॥

कण्ठप्रभाकर्बुरिताट्टहासमिश्रैर्महोभिः फणिनां मणीनाम् ।
रुद्रानपूर्वामरचापचित्रशरत्पयोदप्रतिमानपश्यत् ॥१७॥

अथेति कर्तव्यतयेव यागं त्यागं कृपाकोमलयेव वाचा ।
शान्त्येव योगक्षमयेव धर्मं हुताशनोपासनयेव वेदम् ॥१८॥

कैलासशैलेन्द्रमिवैकदेशसंक्रान्तया काञ्चनशैलभित्त्या ।
मन्थाचलेन्द्रं हरिबाहुपाशहेमाङ्गदोल्लेखनरेखयेव । १९॥

---

१. स्वभूम्यनतिक्रमेण । २. 'बन्धैः' इति पाठान्तरम् । ३. दशमद्वारेण बहिर्निर्गच्छत् ।
४. इति(? तः) त्रिभिः कुलकम् ।

मणिप्रदीपप्रभयेव सौधं शरत्पयोदं शशिलेखयेव ।
अलंकृतं पर्वतराजपुत्र्या ददर्श देवं शशिखण्डमौलिम् ॥२०॥ [कुलकम् ॥]

तमानमन्ती गलितावदातकर्णावतंसीकृतदन्तपत्रा ।
स्वरूपरेखाजितचन्द्रलेखागृहीतपादद्वितयेव रेजे ॥२१॥

अशेषयोषाजनपूर्वगुर्वीमुमां कुमारि प्रथमं नमेति ।
विहस्य यद् भाषितमीश्वरेण तदास तस्याः पतिलाभसूत्रम् ॥२२॥

प्रणम्य देवीमथ तत्प्रसादलब्धोचितस्थानगता नतभ्रूः ।
पृष्ठेन बाहुद्वयपीडिताङ्गी भेजे भुजास्पर्शनपूर्वमस्याः ॥२३॥

अथोपमापारमितामप्रमेयललामधाम्नोरनयोरमुष्याः ।
अगाधरूपामृतवारिराशौ ममज्ज लज्जाविधृतापि दृष्टिः ॥२४॥

रूपस्य तस्याद्भुतदर्शनस्य प्रेम्णश्च संजीवितमन्मथस्य ।
गन्तुं तयोः पारमपारयन्ती चक्रे चिरं चेतसि राजपुत्री ॥२५॥

केनापि जाने भिदुरेण दूरमनादिना स्नेहरसेन भिन्नाः ।
परस्परेण स्वयमेव सक्ताः सौभाग्यसंपत्परमाणवोऽमी ॥२६॥

निजाङ्गलावण्यमदेन नूनमनेन दग्धः प्रभुणा मनोभूः ।
यद्दर्शने संप्रति शैलपुत्री सृजत्यनेकानिव पुष्पचापान् ॥२७॥

अस्यैव वक्त्रद्वितयस्य नूनमन्योन्यमश्रान्तविलोकनाय ।
अनिर्वृतो मूर्ध्नि महेश्वरेण धृतस्त्रियामारमणप्रदीपः ॥२८॥

द्वाभ्यामपर्याप्तनगेन्द्रकन्यालावण्यपुण्यामृतपानसौख्यः ।
नेत्रापदेशात् त्रयमञ्जलीनां चकार ताराधिपखण्डधारी ॥२९॥

अश्रान्तमेतस्य वधूवरस्य नदिव्यभावादनिमेषभावः ।
अजस्रमालोकनलालसानामभ्यास एवैष विलोचनानाम् ॥३०॥

न ज्ञायते किं विदधाति गौरी गोरोचनाचन्दनपत्रभङ्गैः ।
कपोलसंसङ्गिनि विभ्रमाने स्मिताश्रुमिश्रे हरदृष्टिपाते ॥३१॥

असाधुकारी परमेश्वरोऽपि य एतया कोमलभालपन्त्या ।
वामाङ्कभागस्थितयापि देव्या वीणाविनोदव्यसनी वृषाङ्कः ॥३२॥

अप्येतयोः प्रेम्णि महाकवीनां नास्त्येव नूनं वचनावतारः ।
तपः कुमारी चरति स्म यस्मै यदर्धमर्धेन बिभर्ति भर्ता ॥३३॥

---

१. यः खलु जितो भवति स पादयोर्लगति । २. 'अभ्रान्त°' इत्यपि पाठः ।

सख्योऽपि चैता न चिदंशभाजः क्षणे क्षणे दर्पणमर्पयन्त्यः ।
पुरः सतीन्दौ गिरिकन्यकायाः पुरः पुरारेरपि तत् कपोले ॥३४॥
अवश्यमस्मिन्मणिदर्पणेऽपि वामेतरव्यत्ययकैतवेन ।
स्थानेऽपि निष्पन्नमिथः समाधौ[1] गौरी हरः स्याद्गिरिशो भवानी ॥३५॥
विभाव्य तद्भावविदं भवानीं भवोऽपि शर्कं व्यसृजत् तदानीम् ।
स चामरैः सार्धमथ प्रतस्थे सचामरैरप्सरसां च सङ्घैः ॥३६॥
विजित्य यातेषु मराललीलां गन्धर्वगीर्वाणपुरोगमेषु ।
जिगाय गौरी च जगद्गुरुश्च हेमाब्जिनीमानसयोः प्रतिष्ठाम् ॥३७॥
अत्रान्तरे व्यञ्जितनेत्रपद्मद्वयापतद्द्विप्रपरागगौरैः ।
मनागवच्छिन्नकपोलदेशैर्विराजमानादरहासलेशैः ॥३८॥
पत्युः प्रियाकारमुदञ्चितायाः भ्रुवो व्यधाय व्यपदेशभावम् ।
उत्पन्नकर्णोत्पलपातभीतिरुत्तम्भनस्तम्भमिवार्पयन्ती ॥३९॥
वामाङ्गभागप्रसरत्कटाक्षलक्षेण धौतोत्तरदिग्विभागा ।
नैसर्गिकस्वर्गसरिद्विरोधादन्यामिव स्वः स्वरितं सृजन्ती ॥४०॥
वामाङ्गदेशं व्रजता मुखेन जूटे लसत्यंसमनु द्वितीयम् ।
द्यौः पूर्णचन्द्रप्रतिकूलगेन यथा यथा याति नवाम्बुवाहे ॥४१॥
प्रत्युत्तरं च प्रतिदक्षिणं च विवर्तिताभ्यां मणिकुण्डलाभ्याम् ।
आषाढमूर्ध्नि प्रतिपद्भवे च संक्रान्तिरेणाङ्कदिवाकराभ्याम् ॥४२॥
आकृष्टसाधारणहारयष्टि[ः] स्तनस्तदीयो विरराज वामः ।
गृहीतमेकं सह चक्रवाक्या मृणालमाच्छिद्य यथा रथाङ्गः ॥४३॥
तदीयपालीवलिताङ्गयष्टिः सलीलकृष्णां त्रिवलिं दधाना ।
उल्लासिता दक्षिणमारुतेन गङ्गेव वामाङ्गतरत्तरङ्गा ॥४४॥
मनोरथप्रस्तविनी प्रकामं तामात्मवत्सामिव कामधेनुः ।
अपश्यदानन्दजलार्द्रदृष्टिरगेन्द्रपुत्री दनुजेन्द्रपुत्रीम् ॥४५॥
प्रसादवृक्षस्य फलोद्यतस्य तत्पूर्वपुष्पोद्गमकोमलानि ।
उत्तंसयन्ती दरहासकान्तिदन्तांशुदामानि दिशां मुखेषु ॥४६॥
ददौ वचः पर्वतराजपुत्री पीयूषगण्डूषरसाढ्यमस्याः ।
बाला तु वक्त्रार्पणकातरेव प्रीता पपौ श्रोत्रपुटद्वयेन ॥४७॥

---

१. 'समाधेः' इति पाठान्तरम् ।

बाल्येऽपि कल्याणिनि कल्पितस्ते वरः परं संप्रति शंसनीयः ।
दातव्यसिद्धावपि कौतुकार्थमर्थित्वमेवंविधमीदृशीनाम् ॥४८॥

मासे विशाखाविशदप्रदोषे या द्वादशी रात्रिरुदारचन्द्रा ।
स्वप्नायमाना मदनायमानं द्रष्टासि तस्यां[1] पतिमात्मतुल्यम् ॥४९॥

सपदि मुखविकाशाच्चन्द्रमाशेव पूर्वा
प्रियमथ कथयन्ती संनिधे प्रेक्षणीयम् ।
अकृत मुदमुदारां पार्वती प्रेषितासौ
निजनगरपुरन्ध्री नेत्रनीलोत्पलानाम् ॥५०॥

इति भट्टलक्ष्मीधरकृतौ चक्रपाणिविजये महाकाव्ये उषावरलाभो नाम चतुर्थः सर्गः ॥४॥

अथ पञ्चमः सर्गः ॥

श्यामपत्रकुथदर्शनादथ ज्ञातगर्भितसरोजराजिषु ।
अप्यरण्यसरसीषु विक्रियामादधे प्रथममेव माधवः ॥१॥

छाययैव सहकारपादपे शंसति प्रसवनीयमङ्कुरम् ।
एति याति पुनरेति चाकुलः कोकिलः स्पृहयमाणमानसः ॥२॥

प्रत्यभासत पिकस्य केवलं निष्प्रपञ्चकलपञ्चमध्वनिः ।
स्वादनिन्दितसुधारसोऽप्यसौ न त्वशक्यत विधातुमानने ॥३॥

उत्तरत्यथ हिमे शनैः शनैः कञ्चुकैरपि समं चिराज्जनैः ।
कुड्मलानि नलिनीषु लेभिरे द्रष्टुमिन्दुवदनासु च स्तनाः ॥४॥

आजगाम ललितातपव्यथाखिन्नकिंनरवधूजनस्तनैः ।
सेव्यमानमलयाद्रिशाखिनां सौख्यनिःश्वसितशीतलो मरुत् ॥५॥

कुङ्कुमात् कुचपुषोऽपि योषितश्चन्दनच्छुरितचारुमूर्तयः ।
बाल्ययौवनविचित्रचन्द्रिकाचर्चिता इव दिशो विरेजिरे ॥६॥

इष्टवासरविरामदर्शनम्लानया सपदि कुन्दवीरुधा ।
पुष्पपातविहितोपदेशया हाससंयम इव व्यधीयत ॥७॥

कौतुकोत्तरलकामिनीजनप्रेक्ष्यमाणतिलकप्रसाधिते ।
श्मश्रुराजिसदृशी मुखे मधोरुल्ललास कुसुमंधयावली ॥८॥

---

१. 'याते' इत्यपि पाठः ।

पादपद्मतलताडनच्छलात् पूर्वमेव युवतीभिरर्पितम् ।
जन्मनः फलमशोकशाखिनां लम्भितास्तदनु पुष्पसंपदम् ॥९॥
तन्मुखोज्झितमवाप्य केसरैरर्पितं परिमलच्छलेन यत् ।
स्वादयन्मधु तदेणचक्षुषां दास्यमाप भुवि को न मानवः ॥१०॥
लग्नमेत्य पवनेन वीरुधां पल्लवे चरणकोमलत्विषि ।
सा तु तत् किल चिरागमक्रुधा कम्पमानमनयत् पराङ्मुखम् ॥११॥
भृङ्गसार्थकवरीकरम्बितं कुर्वति प्रसवबन्धनं मधौ ।
उल्लसत्पुलकजालकोमलो वीरुधामभवदङ्कुरोत्करः ॥१२॥
दक्षिणानिलनटेन सूचिते चैत्रमन्मथचरित्रनाटके ।
माधवेन शनकैरुदीरिता वांशिकेव कलकण्ठकामिनी ॥१३॥
दीर्घमाधववियोगमूर्च्छनाच्छेदमाप नियतं वनस्थली ।
तत्क्षणोन्मिषितलोचनारुणं या दधे सपदि पल्लवं नवम् ॥१४॥
मर्दिते सुरभिणा मधुव्रतश्रेणिकज्जलशलाकया शनैः ।
पुष्पचक्षुषि बभौ वनश्रियो हर्षबाष्पजलवर्षवन्मधु[ः] ॥१५॥
मञ्जुषट्पदकदम्बचुम्बितं बिभ्रती कुसुमकिङ्किणीगणम् ।
दक्षिणानिलचलल्लताभुजा नर्तिता मधुनटेन पाटला ॥१६॥
वीक्ष्य तत्क्षणलसत्पयःपटव्यक्तकुड्मलकुचां सरोजिनीम् ।
आर्द्रचन्दनसुगन्धिमाददे दक्षिणं करमिवानिलं मधु[ः] ॥१७॥
सक्तरक्तदलयुग्मकोमलं बालपल्लवमशोकशाखिनः ।
मन्मथप्रणतिहेतवे कृतं हस्तसंगतमिव व्यराजत ॥१८॥
उत्थितोऽग्निरिव चम्पकद्रुमे मन्मथो मलयवातफूत्कृतः ।
यस्य कुड्मलशिखासु षट्पदाः स्पष्टधूमपटलीनिभा बभुः ॥१९॥
चित्रकौसुमपरागरञ्जितं भ्रान्तभृङ्गततिवर्णराजिभिः ।
मन्मथासनकृते मधुश्रिया पूरितं दिवि चतुष्कमायतम् ॥२०॥
आरचय्य सुवसन्तकच्छलं वल्लभैः सह सहासमङ्गनाः ।
चक्रिरे शिशिरवारिपल्लवैः सव्रणाधरविकारनिर्वृतिम् ॥२१॥
प्राप्य चैत्रमतिरागिणि प्रिये कापि निन्दति तनुं मनस्विनी ।
वर्धतेऽस्य मधुनाऽधुना स्मरः केवलैर्न पुनरेभिरङ्गकैः ॥२२॥

---

१. 'योजिते' इति पाठान्तरम् ।

व्यक्तमेव विदधे यदप्रियं तत्प्रियैस्तदसहन्त हन्त ताः ।
व्रीडया यदचिरात् तु नागतं मेनिरे तदतिविप्रियं प्रियाः ॥२३॥
प्रस्थितैरनु परस्परं पुरा मार्ग एव मिलितैरथ प्रियैः ।
छद्मना विरचितं यदुत्तरं तत्र पुपोष रसमुत्तरोत्तरम् ॥२४॥
इत्यगाधरतिवारिधौ मधौ दुष्टदक्षिणमरुद्वशागतम् ।
इच्छया भुवनपोतमाददे दुर्धरो मदनमण्डलेश्वरः ॥२५॥
दानवेन्द्रदुहितापि बिभ्रती नूतनप्रियसमागमत्वराम् ।
तैरनेकविधविभ्रमैर्मधोर्मन्मथप्रथमगम्यतां गता ॥२६॥
स्निग्धबन्धुवचनेऽपि कुर्वती शून्यहुंकृतिनतोन्नतं शिरः ।
सूचित(:)प्रियसमागमोत्सवं तं स्म संस्मरति केवलावधिम् ॥२७॥
याति नास्तमयमेति नोदयं निर्दयः किमपि पद्मिनीपतिः ।
इत्यपारमपि कालकर्पटं कर्तुमेकघटिकामियेष सा ॥२८॥
आकृतिः प्रतिपदामिवेन्दवी द्वादशीमथ कथंचिदेत्य सा ।
क्षीयमाणतनुरप्यनुक्षणं दर्शितोदयमनोहरं बभौ ॥२९॥
आगतं नु पतिदर्शनावधि संनिधावपि यदन्तरायताम् ।
ज्ञातमाद्यमिव वासरं तया दूरतस्तदतिमात्रमन्तरम् ॥३०॥
नेक्षितापि विधुरा सरोजिनी न श्रुतापि रुदती रथाङ्गिका ।
उत्सुकेयमिति तद् दयालुना संवृतं दिवसमंशुमालिना ॥३१॥
पद्मिनीभिरपि पद्मलोचनात् तत्क्षणं गतमधुव्रतच्छलात् ।
भर्तुरुग्रविरहव्यथावशादादिपीतमपि वान्तमञ्जनम् ॥३२॥
उद्गता तदनु पूर्वपर्वतादन्धकारतरुबालकन्दली ।
प्रस्थिरे भुवनवल्लभे रवौ पूर्वया विरचितेव वेणिका ॥३३॥
अन्धकारितमुखीभिरप्यलं बिभ्रतीभिरभिरक्तमम्बरम् ।
भास्वति प्रचलिते विनिर्मितं शेषदिग्भिरपि वेषमङ्गलम् ॥३४॥
संततज्वलितपावकोपमे निर्वृते किरणचक्रवालिनि ।
वीक्षितं गगनकर्परोदरे रूक्षकज्जलमलीमसं तमः ॥३५॥
पार्श्वतस्तुलितकाण्डकर्पटे व्योम्नि तानितवितानविभ्रमे ।
स्वेच्छमन्धपटमन्दिरोपमे क्रीडितं तमसि बन्धकीजनैः ॥३६॥
पुञ्जिताञ्जनघनैः समन्ततो रूपमेव तिमिरैस्तिरोहितम् ।
शङ्कितं जगदसच्च सत्यपि स्पर्शगन्धरसवाङ्मयोदये ॥३७॥

शक्यते स्म न पदात् पदान्तरं शङ्क्यते स्म च रसातले गतिः ।
क्षोभितैरिव शरीरिभिः स्थितं दुस्तरे तिमिरकर्दमाम्बुधौ ॥३८॥
खातनेत्र इव नष्टदर्शनो निश्चलो निगडबन्धनादिव ।
लोक एष नियतेर्नियोगतो बन्दिमन्दिरमिवान्वभूत् तमः ॥३९॥
सप्तलोककृतमण्डपोपमव्योमपूर्वतटतानिता बभौ ।
दैत्यराजतनया महोत्सवे पल्लवस्रगिव बालचन्द्रिका ॥४०॥
स्वप्ननाटकमनोज्ञमीक्षितुं संविधानकमुषा निरुद्धयोः ।
आविरास विधुरप्यथ क्षणादाक्षिपञ्जवनिकानिभं तमः ॥४१॥
सान्द्रचन्दनरसैः समीभवत्कुङ्कुमद्विरुचिभिर्मरीचिभिः ।
रङ्गभूमिरिव भूरि संपदा तेन तत्क्षणमपूर्यत क्षितिः ॥४२॥
निर्जगाम जगदेकमण्डनं मण्डलात् तदनु शीतदीधितेः ।
विश्वकारणमुनेः कमण्डलोर्दिव्यलोकतटिनीव चन्द्रिका ॥४३॥
विस्फुरद्भिरिव सर्वतः पतत्कामकाण्डकुसुमोत्थरेणुभिः ।
पूरयन्नपि घनैर्मरीचिभिर्नैत्रयो रजनिवल्लभः शशी ॥४४॥
संततामृतमुचः कलाघटीरुद्वहन्गगनसिन्धुरोधसि ।
रश्मिजालरचितारमण्डलः श्वेतभानुररघट्टवद् बभौ ॥४५॥
दीपशून्यशयनेषु मानिनीकुण्डलीकृतकृशाङ्गवीरुधः ।
प्रापयन्मदनबाणलक्षतां जालमार्गचरमैन्दवं महः ॥४६॥
शीतलैरपि तदागमाशया तं विना च परितापहेतुभिः ।
इन्दुरश्मिभिरुषापि कारिता कैरवाम्बुजसमानमाननम् ॥४७॥
स्थानमन्वयमुदन्तमाकृतिं किंचिदेव न विवेद बालिका ।
प्रत्ययाद् गुरुजनस्य तं परं ध्यायति स्म पुरुषं तपस्विनी ॥४८॥
उत्तरीयमधरं च बिभ्रतीमावभौ विशदलम्बमम्बरम् ।
जङ्गमेव नरनागजाह्नवीवारिपूरयुगधारिणी धरा ॥४९॥
सा रराज विधृतार्द्रचन्दना स्नातमौक्तिकविविक्तमण्डना ।
कौमुदीभरविमिश्रतारका चन्द्रमूर्तिरिव पादचारिणी ॥५०॥
तत् तथैव किमुतान्यथा भवेदित्युमानिगदितेऽपि वस्तुनि ।
भीतभीतमिव यातमेतया तल्पमन्दिरमधीरनेत्रया ॥५१॥
आरुरोह च निजाङ्गकौमुदीपूरपीवरितपाण्डुरच्छविः ।
हंसतूलशयनीयमुन्नतं मेघमिन्दुकलिकेव शारदी ॥५२॥

आससाद शयितुं न चिन्तया तं ददर्श न च निद्रया विना ।
प्राप खेदमपि सिद्धसंनिधावप्रतीतिकृपणेन चेतसा ॥५३॥
स्वाङ्गतप्तशयनीयखिन्नयोः पार्श्वयोर्विपरिवर्तनैर्घनैः ।
ग्रीष्मपङ्कलुठितैरितस्ततः सा जगाम शफरीव शोच्यताम् ॥५४॥
किं च किंचिदपि कारणं विना सिद्धिसंशयदशो मृगीदृशः ।
सानुबन्धमधमं गतागतैः कण्ठदेशमसवो यियासवः ॥५५॥
ध्यानगम्यगिरिकन्यकापुरः सा चकार करणीयनिश्चयम् ।
चेतयामि तमहं विलोक्य वा देव जीवितमपि त्यजामि वा ॥५६॥
सुप्यतामिति सुखार्पितं तया वस्त्रपल्लवमवाप योग्यताम् ।
तद्विलोकनसकौतुकप्रियक्षेपणीयमिव मङ्गलांशुकम् ॥५७॥
छाद्यमानवदनाब्जपीडया यन्मधुव्रतगणैर्झणत्कृतम् ।
तत् तया विदितमेष्यति प्रिये गीयमानमिव मञ्जुमङ्गलम् ॥५८॥
चित्रभूषणमणिप्रभागणैश्चर्चिता[ः] सदनभित्तयस्तया ।
तद्विवाहलिखितं विरेजिरे दर्शयन्त्य इव मातृमण्डलम् ॥५९॥
सा रराज शयितापि भामिनी स्वप्नसंगमितवल्लभा हृदि ।
पूर्णचन्द्रमसि वारिबिम्बिते जाग्रतीव सरसा कुमुद्वती ॥६०॥
तर्पिता दयितदर्शनामृतैर्दर्शिता पुलकिनी तया तनुः ।
प्रीणिता नवपयोदवारिभिः शष्पसूचिनिचयार्चितेव भूः ॥६१॥

अथ खलु हरिणाक्ष्यास्तत्र साक्षादिवेन्दा-
वजनि रजनितुल्या वल्लभे चित्तवृत्तिः ।
अमृतरसमयीव प्रेक्षिते यत्र जाता
व्रजति च सति यस्मिन् सार्धमेव प्रतस्थे ॥६२॥

इति भट्टलक्ष्मीधरकृतौ चक्रपाणिविजये महाकाव्ये स्वप्नदर्शनो नाम पञ्चमः सर्गः ॥५॥

अथ षष्ठः सर्गः ॥

अथ त्रियामाविरमे मृगीदृशः कृतं महाश्चर्यमनार्यवेधसा ।
सरोजिनीतुल्यविबुद्धयापि यत्कुमुद्वतीभिः सह खिन्नमेतया ॥१॥
क्षणं च सा तेन विनापि बिभ्रती विचित्ररत्नद्युतिबाहुबन्धनम् ।
रराज पूर्वेव विनिर्गते रवौ महेन्द्रबाणाशनिमण्डलाद् बहिः ॥२॥

विलोक्य शून्यं शयनं ततस्तया विरेजिरे दिक्षु निवेशिता दृशः ।
विशालनीलोत्पलदामनिर्मिता विहाय यास्यत्यतिवागुरा इव ॥३॥
प्रसीद सद्यः प्रिय देहि दर्शनं न सोढुमीशे परिहासमीदृशम् ।
इति स्वपृष्ठे किल तिष्ठतीति सा ददौ हसन्ती नयने मुहुर्मुहुः ॥४॥
अधोमुखी तल्पतलं विलोक्य सा विलोक्य वातायनमुन्मुखी पुनः ।
पतिप्रमोषार्तिविमुक्तकुन्तला ययौ स्मरावेशविडम्बनामिव ॥५॥
रतेऽपि तस्मिन्परिरम्भशीतले बभार बाला मुखपद्मसंमुखम् ।
अदूरयाते मलयाद्रिमारुते मुहूर्तमम्भोजमिवारविन्दिनी ॥६॥
विनाऽनिरुद्धं मलिनात् तदाननादितस्ततः शून्यपरिक्रमा दृशः ।
विधोर्वियोगे विकलोत्पलोत्थिता द्विरेफमाला इव शोच्यतां गता ॥७॥
दृशोरयोगेऽपि मनस्तमन्वभूत् प्रतीतिरेतज्जनिता न चक्षुषः ।
जहार सा दग्धवियोगदुर्मतिस्तदा तदङ्गेऽपि परस्पराप्तताम् ॥८॥
मनोभवत्रस्तमनःप्रकम्पितैरवाप भीरुः परभागमङ्गकैः ।
सुरद्विपान्दोलितवारिवल्गितैर्नभः सरित्पङ्कजकाननैरिव ॥९॥
ध्रुवं स कोऽपि क्रकची मनोभवः प्रपञ्चितं येन सहस्रधा मनः ।
कुतोऽन्यथेदं युगपत् तयेक्षितं जगत् तदाकारपरंपरामयम् ॥१०॥
अथातिलग्ने कुसुमायुधग्रहे प्रलापगुम्फग्रथनापदेशतः ।
ददौ लिखित्वा दिवि शासनेन सा प्रियाय बाष्पोदकपूर्वकं वपुः ॥११॥
क जीवितेश क्व च सौम्यदर्शन प्रियंवद क्वासि गतो मम प्रिय ।
इति स्वचित्ते लिखितां मुहुर्मुहुः स्मरोपदिष्टां परिवाचमग्रहीत् ॥१२॥
रहस्यकेलिश्लथकेशबन्धने मुहूर्तमप्रेक्ष्य चिरादिवेक्षितम् ।
अतृप्यताचुम्बितमादरेण यत् तदेव ते विस्मृतमाननं मम ॥१३॥
पतामि ते मन्मथनाथ पादयोः प्रसीद निर्दारय निर्दयं शरैः ।
द्विधा हि जाते हृदये तदाश्रयः सुखेन मे यास्यति दृश्यतां प्रियः ॥१४॥
निबोध जानासि न येन दुस्सहामनङ्गबाणोद्भटभेदवेदनाम् ।
अनारतं तिष्ठसि नाथ निह्नुतस्त्वमत्र वज्रप्रतिमे मया हृदि ॥१५॥
जितेऽपि रूपेण निकामभेदिना सकोपकण्ठीरवतेजसि स्मरे ।
कृतास्मि कस्मादिव निर्दय त्वया तदाननापूरणपोतपिण्डिका ॥१६॥

---

१. '°द्रव°' इत्यपि पाठः ।

निजाननं दर्शयता स यस्त्वया कृतो महीयानुपकारपर्वतः ।
वियोगवज्रेण तमद्य भेदयन्नहो त्वमिन्द्रः खलु दत्तहारिषु ॥१७॥
नतास्मि ते श्यामलगात्रि पादयोरकाण्ड एवासि विहाय मां गता ।
तदेहि निद्रे वितरात्मदर्शनं विधेहि भूयः सखि सङ्गमावयोः ॥१८॥
यदा स देवः क्वचिदस्ति तादृशस्तदा तदीयास्मि न विस्मयास्पदम् ।
यदापि संकल्पज एव केवलं तदीयदासी नियतं तदाप्यहम् ॥१९॥
अवैमि तासां ध्रुवमप्रियः पतिर्वियोगवार्तामपि वर्णयन्ति याः ।
अहो समस्ते भुवनेऽपि तन्मये तदाननं किं न विलोकयामि ॥२०॥
समागमोऽस्तु स्मरणं च जायतां कदाचिदेवास्तु गुणानुकीर्तनम् ।
ध्रुवं हृदि प्रेममये मृगीदृशामिमाः समा भर्तृषु भोगभङ्गयः ॥२१॥
इयद्भिरेव त्वदसंगमेन मे दिनैरतीतैरनुतप्यते मनः ।
वितीर्णमाच्छिद्य तु नेत्रयोः फलं त्वयाधुना निर्दय दह्यतेतराम् ॥२२॥
अतातदत्तापि हि चित्ततस्कर त्वयास्मि भुक्ता यदि युक्तमेव ते ।
इयं तु लज्जा मम धूर्त वर्तते न वर्तसे यद्गुणगाढयन्त्रितः ॥२३॥
हसन्ति ते पद्मदलाक्ष दक्षतामिमं सहारं च सचन्दनं च मे ।
स्तनद्वयोत्सङ्गमपास्य वर्तसे यदत्र कामाग्निकरालिते हृदि ॥२४॥
किमङ्ग कुर्मस्त्वददर्शनादियं दृशोर्वराकी यदि रोदिति द्वयी ।
इदं तु मे नाथ सदा त्वदाश्रितं तथापि चेतो मदनेन बाध्यते ॥२५॥
त्वयेव तेनापि मुहूर्तसङ्गिना त्वदीयहारेण विना स्तनद्वयी ।
अलीकभारो हृदि नेत्रयोर्धृतिर्दुरुद्वहा वल्लभ मे भविष्यति ॥२६॥
उमावचःप्रत्ययदर्शनेन मामवेहि सद्यो भवदर्थमर्थिनीम् ।
मनोरथानां त्रुटितेऽपि[1] संशये विलम्बमाहुर्मरणं मनीषिणः ॥२७॥
अनेन भुक्ता ध्रुवमङ्गकेन मे त्वदङ्गसङ्गव्यपदेशिनी सुधा ।
असह्यरूपे विरहेण वैरिणा कृतेऽपि मारे न विपद्यते यतः ॥२८॥
कुतूहलं मे प्रियचेष्टितेन ते युवापि यद् बालतया न मुच्यसे ।
क्व लीयसे वा क्व पलायसे वा प्रयाति यस्यानुपथेन मे मनः ॥२९॥
अनारतानेकमनोरथार्पितैस्त्वदाननस्वर्णसरोजकाननैः ।
निरन्तरच्छन्नमनीरसं च मे तथापि रिक्तं प्रतिभाति मानसम् ॥३०॥
अकारि दौर्भाग्यवती विकर्मभिः स्मरेण रागो धनुषि ध्रुवं गुरुः ।
अपि द्वयोर्निर्विवराङ्गसङ्गयोर्यदेकमेवास्य भिनत्ति सायकः ॥३१॥

---

१. 'हि' इत्यपि पाठः ।

उषाप्रलापश्रुतिदारितैरिति ध्रुवं त्रिलोकी हृदयैरभिद्यत ।
उवाह बालारुणविभ्रमेण सा कुतोऽन्यथा रक्तपयस्तरङ्गिणीम् ॥३२॥
समेत्य मुक्ता दयितेन तादृशा कथं वराकीयमुषा भविष्यति ।
इतो वितर्कादिव रूपसाक्षिणी शिरो धुनीते स्म रहस्यदीपिका ॥३३॥
उषावियोगेऽपि गतास्मि संगतिं सरोरुहश्रीसुहृदेति लज्जया ।
अनीशया दर्शयितुं नभःश्रिया तिरोदधे वक्त्रमिवेन्दुमण्डलम् ॥३४॥
यदप्यवापुः ककुभो विभक्ततामपोदमाभाति निसर्गजं न मे ।
ध्रुवं दिवस्तत्परिदेविताक्षरैर्बभूव सद्यो हृदयं तदष्टधा ॥३५॥
उषाविषादेऽपि पतंगसंगतिः कृता नलिन्येति न किंचिदद्भुतम् ।
अपि प्रभाते मधुना ज्झलज्झलैर्न लज्जते या चषकैरिवाम्बुजैः ॥३६॥
मधुव्रतालीविरुतप्रलापिभिर्वहद्भिलोलासववाष्पवेणिभिः ।
उषावियोगे सरसीभिरप्यलं प्रसारितैः पद्ममुखैररुद्यत ॥३७॥
तथा वियुक्तामथ तां तपस्विनीमुपेत्य सख्यो वदनैरनुज्ज्वलैः ।
बभुः प्रयाते शतपत्रवान्धवे नभःश्रियः संनिहिता यथा दिशः ॥३८॥
अथ व्यथाप्रश्नपरे सखीजने न निर्गता गीस्त्रपया तदाननात् ।
अभिन्नमुद्रादथ शुक्तिसंपुटात् क नाम मुक्ताफलकान्तिनिर्गमः ॥३९॥
विनापि सा वाचमवोचदङ्गकैर्विपाण्डुभिः पञ्चशरोत्सवं नवम् ।
अकोकिलोक्तावपि शोषिभिर्दलैर्वनस्थलीव प्रथमोदयं मधोः ॥४०॥
ततः स्मरोऽसाविति सौख्यशीतलैरलं भिनत्तीति विषादसोष्मभिः ।
तदीयसख्यः सममेव भेजिरे द्विरूपरम्यैर्नयनोदबिन्दुभिः ॥४१॥
विनिर्मितस्ताभिरथातिशीतलः सरोजिनीपत्रपयोजमण्डपः ।
विमुञ्चता येन पयःकणोत्करं जितो बलाकाशबलो घनागमः ॥४२॥
विलीननीहारशिलातिशीतलैर्जलैरुपाचर्यत सा यथा यथा ।
तथा तथा पङ्कजकोशकोमलैरलं तदीयैः परिशुष्कमङ्गकैः ॥४३॥
तदङ्गशैत्याय समर्पितः शशी क्षणाद् गतः प्रज्वलितावशेषताम् ।
विवेश सद्यः किल जाह्नवीजले कलेति सेयं हरमूर्ध्नि गीयते ॥४४॥
अथोक्तमाजन्मसमानदुःखया रहस्यसर्वस्वविदा वयस्यया ।
शनैरनुद्वेगकरीभिरुक्तिभिः प्रविश्य तच्चेतसि चित्रलेखया ॥४५॥

---

१. 'वियोगे' इति पाठान्तरम् ।

अपूर्वमुर्वीपतिपुत्रि वर्तते तवाद्य वक्त्रं गतयावकाधरम् ।
विशुद्धिजातोदरपत्रपाटवं द्विरेफपीते मधुनीव पङ्कजम् ॥४६॥
अकाण्ड एव त्रुटिते कथंचन त्वमद्य मुक्तावलये विलासिनि ।
विराजसे दक्षिणवातपातितप्रसूनसौभाग्यवतीव मालती ॥४७॥
हरेः कराम्भोजसलीललालनाप्रमृष्टसिन्दूरसुदूरवर्धितम् ।
हृताङ्गरागा हरति स्तनद्वयी तवेयमैरावणकुम्भविभ्रमम् ॥४८॥
विमिश्रितैः संततनेत्रवारिणा प्रकामतप्तस्तनदत्तमौक्तिकैः ।
ध्रुवं हृदिस्थाय तदद्य सुन्दरि त्वयाऽयमर्घो मदनाय दीयते ॥४९॥
तदुच्यतां कस्य वियोगपावकं निगूढमन्तर्धमति स्मरस्तव ।
कुतोऽन्यथा पद्मदलाक्षि दह्यते शिखोद्गमेनापि विना शरीरकम् ॥५०॥
त्वदङ्गदाहश्रवणार्तपार्वती प्रदत्तया धूर्जटिचन्द्रलेखया ।
तथा विलीय स्थितमस्थिशेषया यथा स्तनान्तर्नखलाञ्छनायितम् ।५१॥
इदं च ते हन्त हरत्यसूनिति स्वतोऽपि दत्तं हृदये दयालवः ।
निपीतरक्तस्मरशस्त्रशङ्कया क्षिपन्ति सख्यः सखि रक्तपङ्कजम् ॥५२॥
यथा यथा त्वं सुतनो तनूयसे तथा तथा पश्य मलीमसाः सखीः ।
अवश्यमेवेन्दुकलापरिक्षये त्रिवर्णभावाय भवन्ति रात्रयः ॥५३॥
स्वयं वदन्ती हृदि सर्वदैव मामुषे कथं रक्षसि हृद्गतं मम ।
तदुच्यतां कस्य रवेरिवाब्जिनी त्वमीहसे तापकृतोऽपि दर्शनम् ॥५४॥

अथ दृढतरं सारंगाक्ष्यास्तथा चिरलग्नया
  कथमपि हृते व्रीडावस्त्रे विदग्धवयस्यया ।
चकितचकितं किंचित्किंचिच्चकार कथंचन
  क्षणमिव मुखव्यक्तिं मुग्धा वधूरिव भारती ॥५५॥

शरच्चन्द्रज्योत्स्नामृतमृदितनालोत्पलदल-
  द्युता सर्गप्रज्ञानिकषश्वासयि विरचितः ।
युवा गौरश्यामः प्रियसखि मुहुः भिनसि मे
  विनिर्मायानन्दं निशि निशितशल्यं पुनरभूत् ॥५६॥

इति भट्टलक्ष्मीधरकृतौ चक्रपाणिविजये महाकाव्ये उषाप्रलापो नाम षष्ठः सर्गः ॥६॥

अथ सप्तमः सर्गः ।

अथ नाम निकेतमन्वयं न यदा तस्य विवेद बालिका ।
कथमेतदिति क्षणं तदा क्षुभितं चेतसि चित्रलेखया ॥१॥

अचिराच्च विलोकितस्तया हृदये तद्विपदन्धकारिणि ।
स्वयमेव पुरः परिस्फुरन् सदुपायामलरत्नदीपकः ॥२॥

इदमाह सहानया पुनर्विधुरं धारय देवि जीवितम् ।
अदुरापमवैहि तं जनं सुकृती यस्तव वर्तते हृदि ॥३॥

अयि सीदसि किं प्रसीद मे क्षणमुत्तिष्ठ लुठामि पादयोः ।
अधुनैव निवेदयामि ते जगदालिख्य समग्रमग्रतः ॥४॥

अथ तत्र तमेव वृण्वती सुतनु म्लापय शेषराजकम् ।
अभिनन्दितकान्तकैरवा रुचिरिन्दोरिव पङ्कजाकरम् ॥५॥
क्षणदर्शितसिद्धकिंनरामरविद्याधरमर्त्यमण्डला ।
अपि सृष्टिमखण्डितां विधेः सखि जेतुं मम लेखनी क्षमा ॥६॥
अविवेकिनि किं विलम्बसे निकटे नः खलु जन्मनः फलम् ।
तव तेन समं समागमे नयने यत्कुरुतः कुतूहलम् ॥७॥
अथ दुर्घटकान्तचिन्तया सततश्वासविसूत्रिताक्षरम् ।
उदितं यदधीरया तया रुदितं तत्परिकल्पितं मया ॥८॥
लिखितेऽपि जगत्यशेषतस्तदनालोकनशोकशङ्कया ।
सखि संशय एव मे वरं त्रुटिताशा विरसो न निश्चयः ॥९॥
तदलं लिखितेन लिख्यतां सखि चन्द्रे मदनेन मद्यशः ।
अविलम्बितमश्व(? ङ्ग) तत्कृते तृणवद् या विसृजामि जीवितम् ॥१०॥
इति निष्ठुरवाक्यपीडिता सुकुमारेक्षुलतेव तत्सखी ।
श्रुतिपेयमिदं ससर्ज सा मधुरत्वैकनिकेतनं वचः ॥११॥
अनयैव तवाद्य चिन्तया हतबुद्धेः ... यः प... विस्मृतं मम ।
तदयं शिवयापि सूचिते रुचिते संग... संशयः कुत ॥१२॥
अथ तद्वचसैव तत्क्षणं सुतनोरुच्छ्वसितं मनाङ् मनः ।
घनकालकदम्बवीरुधो नवधारापयसेव कुड्मलम् ॥१३॥
मथनाम्बुकणौघनिर्मले विरमत्यच्छविलोचनाम्भसि ।
ददृशे सदृशं तदाननं शशिना तत्क्षणलब्धजन्मना ॥१४॥

विरराज च बिभ्रती मुखं श्रवणोत्सङ्गनिवेशितालकम् ।
नवनीरदजालपाटलप्रकटं द्यौरिव चन्द्रमण्डलम् ॥१५॥
विहितं प्रियदर्शनाशया जगदालेख्यमपि प्रियं तया ।
सकलं कलकण्ठकान्तया सहकारस्पृहयेव काननम् ॥१६॥
अथ तत्क्षणमेव दक्षया लिखितं चित्रमुषावयस्यया ।
ददृशे कृतमेकहेलया सकलं विश्वमिवेश्वरेच्छया ॥१७॥

लिखितेष्वथ रूपयौवनेष्वभिधानान्वयशक्तिसंपदः ।
प्रतिपादयितुं सुरासुरप्रवराणामुपचक्रमे क्रमात् ॥१८॥
अनुकूल्य कुमुद्वतीवनं सरसोन्नामितनेत्रकैरवा ।
इयमप्सरसामियं ततिः सततं चन्द्रमिवेन्द्रमीक्षते ॥१९॥
निजरूपमदोज्झिताङ्गदः सखि चित्राङ्गद एव विश्रुतः ।
मदनोऽपि यदीयदर्शनत्रपयेवोदसृजन्निजं वपुः ॥२०॥
नलकूबर एष कल्पयन् नयने यस्य मृतिप्रतिक्रियाम् ।
अपि तेन समं त्रिचक्षुषा पुनराशंसति संगरं स्मरः ॥२१॥

वरुणस्तरुणोऽयमस्य तत्सममिन्द्रेण सदा विवादिनः ।
निचखान दिशाविभक्तये ध्रुवशङ्कुं निकटं गदाधरः ॥२२॥
अयमिन्दुरवेहि वारिधेः सुतमेनं रजनीमनःप्रियम् ।
स्मरदाहरुषेव येन तद् विहितं मूर्ध्नि पदं त्रिशूलिनः ॥२३॥
अपदिन्यवपूरणे क्षणे यदुभौ पश्यति वासवः सदा ।
इयतैव निवेदिताकृती सखि देवौ स्वयमश्विनाविमौ ॥२४॥
सुरभिः पुर एष यस्य तैर्मलयोर्वीधरमारुतो हुतैः ।
प्रसृतैः सुमनोमयैः शरैरशरीरोऽपि धनुर्धरः स्मरः ॥२५॥

अथ पत्युरदर्शनेन तामतिखिन्नां नलिनीमिवालिनी ।
नितरामपि मञ्जुभाषिणी न समाश्वासयितुं शशाक सा ॥२६॥
उदितं च तया निरम्यतां सखि रेखापि खलु क्व तादृशी ।
यदचन्द्रमिवोडुमण्डलं तदृते चित्रमिदं विभाव्यते ॥२७॥
अथ संवृणु कस्य वा पुनर्घटितः स्वप्नसमागमो जनः ।
इदमङ्ग मदीयजीवितस्थितिकायव्रतमेव केवलम् ॥२८॥

---

१. '°संज्ञं निगदं' इत्यपि पाठः । २. '°वधूगणे' इति पाठान्तरम् ।

तमवेक्ष्य न दृष्टिरादरादिदमाकाङ्क्षति चित्रमीक्षितुम् ।
अलिनीव सरोजकाननं हरिनाभीकमले विलोकिते ॥२९॥
अथ तत्क्षणमेव विस्मिताऽखिललोकत्रयरूपरेखया ।
अभिधाश्रुतिसूचितस्तया हरिरालिख्यत चित्रलेखया ॥३०॥
तदवेक्ष्य जगद्विलक्षणं कमला कौस्तुभलाञ्छनं वपुः ।
सहसा नतमौलिरुज्जगौ जयशब्दं सकलः सखीजनः ॥३१॥
तमुषा वपुषा च तादृशा सदृशा तस्य दृशा च दीर्घया ।
रमणस्य ममैष पूर्वजः किल कोऽपीति चकार चेतसि ॥३२॥
हठमन्थरितत्रपाकुलं कथमप्युक्तवती च सा ततः ।
अयमेव हि तन्वि सोऽन्वयः स युवा यत्र विशाललोचनः ॥३३॥
रभसादथ दीर्घलोचनं तनयं तस्य लिलेख तत्सखी ।
इतरेतरधामनिःसरत्तटिनीपूरमिवाञ्जनाचलम् ॥३४॥
अवलोक्य तमुत्तरोत्तरप्रियसादृश्यविशेषहृष्टया ।
इदमुक्तमनङ्गवेदनाश्लथलज्जावरणस्फुटं तया ॥३५॥
अयि संवृणु मा स्म तूलिकामयमन्यः क्रियतैव मत्प्रियात् ।
लिखितव्यविलम्ब एव ते तदनालोकनखेदकारणम् ॥३६॥
अधिकाधिकसाम्यसंविदा सहचर्योऽपि बभूवुरुत्सुकाः ।
निकटे सति संविधानके रसिकानामिव चित्तवृत्तयः ॥३७॥
इति यावदवोचदेव सा लिखितं तावदपश्यदग्रतः ।
न विवेद तु तं ललाटिका लिखितं जन्मदिनेऽपि वेधसा ॥३८॥
अनिरुद्धमवाप्य तत्क्षणं क्षणदेवेन्दुमुदारदर्शनम् ।
अपि दूरतरं मलीमसा प्रससादासुरवीरपुत्रिका ॥३९॥
अथ तत्र तया स्वयंवरस्रगुदारे निहिते च लोचने ।
स्मरवादितमन्द्रदुन्दुभिध्वनिमत्ता रतिराननर्त च ॥४०॥
अथ बन्धुरगात्रपल्लवा विरराज त्रपया तनूदरी ।
रसपुष्टिविशेषशोभया लतिकेवाधिकया फलश्रिया ॥४१॥
क्षपयन्नपि तां त्रपाभरैर्विदधे पूर्णमनोरथां मियः ।
विधुवन्नपि दक्षिणानिलैर्मधुरुद्यत्कुसुमां लतामिव ॥४२॥
अनिरुद्धमुखेन्दुदर्शनामृतसंसिक्ततनुस्तनूदरी ।
विदिता मुदितैः सखीजनैः पुनरुत्पादितजीवितेव सा ॥४३॥

अथ तस्य विशालवक्षसो वयसा षोडशवत्सरेण सा ।
वपुषा च कुरङ्गचक्षुषा विवशीभूय चकार चेतसि ॥४४॥
अमृतद्युतिरेव चन्द्रमाः सवितुर्भास्वरमेव मण्डलम् ।
इदमस्य मुखं तु शोभते कमनीयाकृति च प्रभावि च ॥४५॥
इतरेतरदत्तशोभयोरनयोराननकेशपाशयोः ।
ध्रुवमद्भुतरूपदर्शनाच्चकितौ चन्द्रपयोधरौ दिवि ॥४६॥
मृगनाभिविशेषितान्तरस्तिलकोऽयं वितनोति चान्दनः ।
वदनेऽस्य मया समर्पित[ः] स्थितसाकारकटाक्षविभ्रमम् ॥४७॥
अयमोष्ठपुटेन चामुना पुनरुक्तारुणिमानुमापितम् ।
अतिरक्तमतीव च द्रुतं हृदयं मे पिबतीव वल्लभः ॥४८॥
इयमस्य तनोति विभ्रमं विपुले वक्षसि मौक्तिकावली ।
निहितेव निपत्य मे दृशा परितोषाश्रुपयःकणावली ॥४९॥
इति वल्लभचन्द्रदर्शनक्षुभिता मौक्तिकनिर्मलानसौ ।
प्रमदाऽश्रुलवानवाकिरत् सदृशी दुग्धसमुद्रवेलया ॥५०॥
कथितो दयितस्य संगमः स्वसखीनां पुलकोद्गमैस्तया ।
सुरभेः सहकारवीरुधा मुकुलैः कोकिलयोषितामिव ॥५१॥
पुनरेव किमालि लिख्यतामिति तासां परिहासजल्पितैः ।
स्मितमेव शनैर्मनोरथद्रुमपुष्पोद्गमकोमलं तया ॥५२॥
लिखितव्यनिषेधकम्पितं सततानन्दपयोज्झलज्झलम् ।
ददृशे सुदृशः क्षणं चलज्जलशीतांशुसमानमाननम् ॥५३॥
अथ वीक्ष्य परस्परं तयोः सदृशाकारमनोहरं वपुः ।
द्रुततद्घटनाकुतूहलादिदमालप्यत चित्रलेखया ॥५४॥
धुरि तन्वि विवेकशालिनामियमेका तव दृष्टिषट्पदी ।
रसतत्त्वविदा यया कृतं पदमस्मिन् युवराजपङ्कजे ॥५५॥
शृणु संप्रति पत्युरन्वयं हृदयं ते यदि हर्षनिर्भरम् ।
सहसैव न पक्वदाडिमी फलभेदव्यसनं विगाहते ॥५६॥
अपि वक्रकटाक्षताडितो भवभेत्ता सुरलोकयोषिताम् ।
पितुरस्य नताङ्गि यः पिता स पिता लोकपितामहस्य च ॥५७॥
कथयामि च ते कथं कथामितिहासप्रतिपादितामिमाम् ।
अतिचित्रचरित्रचिन्तया वचनं विस्मरतीति मे मतिः ॥५८॥

अभवद् भुवनानि मोहयन्निह सौभाग्यमयः पुरा पुमान् ।
पुरजित्यमरैः स मर्दितः[1] परिशेषेण कृता च पार्वती ॥५९॥

अथ तेन तथापि हारिणा सखिनाधिक्यमकारि किंचन ।
स हि बिन्दुरिवास तत्क्षणं स च सौभाग्यमहार्णवो हरिः ॥६०॥

गिरिजा च तदंशसंभवा भवकल्पद्रुमकान्तवल्लरी ।
परितः फलिता विराजसे(? ते) युवतीनां विविधैर्मनोरथैः ॥६१॥

अथ वानुजनं जनार्दनो हृदयस्थोऽपि दुराप एव यः ।
अपि वक्ति न तं सरस्वती न च निर्णेतुमलं महेश्वरः ॥६२॥

अमरद्रुमचन्द्रसोदरां सखि लक्ष्मीमपवर्त्य वर्तते ।
तदुर[ः] स्थलतल्पशायिनी दयिता संप्रति रुक्मकन्यका ॥६३॥

अपि जीवति वैरदारुणे ज्वलति त्र्यक्षललाटलोचने ।
इदमद्भुतरूपमन्दिरं मदनस्तत्र शरीरमाददे ॥६४॥

अपनीय कलङ्कमङ्कतः सकलाङ्गानि विभज्य रेखया ।
इयमिन्दुशिलातले किल प्रतिमा पञ्चशरेण निर्मिता ॥६५॥

क इहास्य कृती जगत्त्रये स्फुटरेखारचने विचक्षणः ।
इदमाकृतिमात्रमेव मे कथमप्यद्य तदीयमागतम् ॥६६॥

चिरमेव मृगाक्षि वीक्षितः स मया वर्णयितुं न पार्यते ।
मुखरेण हरेः पुराधसा यदि तच्चारु वपुर्विचार्यते ॥६७॥[2]

शुचिमेचकवारिसंगमे मुनयो ये विसृजन्ति जीवितम् ।
तदलभ्यफलप्रदं त्वया चरितं चारुविलोचने तपः ॥६८॥

त्वमनादिगुरोरुषे स्नुषा त्वमशेषासुरगोत्रपावनी ।
अपि सांप्रतमानमन्तु ते मुनयस्त्वच्चरणौ चिरंतनाः ॥६९॥

मरुतां सरितेव वार्तया हरिसंबन्धविशुद्धयानया ।
बलिरुज्झतु तं रसातलस्थितिसंक्रान्तकलङ्ककर्दमम् ॥७०॥

१. 'समर्पितः' इति पाठान्तरम् ।

२. अस्य काव्यस्यैक एवादर्शः समुपलब्धः । तत्रात्र ६६ अङ्कसूचितश्लोकस्यानन्तरं 'शुचिमेचके'ति ६८ अङ्कसूचितो श्लोको लभ्यते । अनुमीयतेऽत्र श्लोकैकस्य लेखनप्रामादिको भ्रंशः । परं संपादने तु भ्रंशनिरपेक्षोऽसौ क्रमः स्वीकृतः ।

दधती पतिदर्शनत्वरामकथाच्छेदसहाऽथ मानिनी ।
अपि वाञ्छितवस्तुगोचरां गिरमाक्षिप्य सवाष्पमब्रवीत् ॥७१॥

अनयोत्पलदामदीर्घया नियतं तन्वि दृशैव पश्यसि ।
न तु पीनतरस्तनावृते हृदये दर्शनशक्तिरस्ति ते ॥७२॥

तदशेषमवेहि दूषणं गुणबुद्ध्या यदुदीरितं त्वया ।
अपि चिन्तय दूरवर्तिनो यदियं तस्य कथा करिष्यति ॥७३॥

इति दुर्घटमिष्टसंगमं गणयन्त्या रुदितं मृगीदृशा ।
स्मितमेव तु हस्तवर्तिनि प्रतिकारे सति तद्वयस्यया ॥७४॥

इति चाह निपत्य पादयोरपराद्धाऽस्मि सखि प्रसीद मे ।
हृदि निश्चितसिद्धिगर्विणः सहनीया सुहृदः प्रमादिता ॥७५॥

इयमस्मि गतैव विद्धि मामनिरुद्धेन समं समागताम् ।
न हि दुर्घटदूरदुर्गमं दुरवापं च दुरुत्तरं च मे ॥७६॥

अणिमानमियं तनोति मे गरिमाणं च ममेयमौषधी ।
महसां तमसां च भूयसां वमनं रत्नमिदं मदिच्छया ॥७७॥

प्रकटान्धपटेन चामुना हृदयं नश्यति पश्यतामपि ।
अवलोक्य च पिच्छिकामिमां भवतीत्रोद्वृतलोचनो जनः ॥७८॥

अथवा कियदुच्यते चिरं न विलम्बं सहते हि ते तनुः ।
इयमग्रत एव नीयसे त्वमनङ्गेन समत्वमात्मनः ॥७९॥

इदमस्तु विमानमम्बरे रयरेखायितरत्नदीधिति ।
दशकण्ठशरास्थिते गुणे प्रसृताकारमिवेन्द्रकार्मुकम् ॥८०॥

अथ विधुरवयस्यावेदनावेगधावद्-
विविधमणिविमानावर्तचित्रैर्दिगन्तैः ।
हृदि परिणयहेतोः प्राप्त एवानिरुद्धे
विततमिव चतुष्कं चित्रलेखा लिलेख ॥८१॥

इति भट्टलक्ष्मीधरकृतौ चक्रपाणिविजये महाकाव्ये सखीसंयोगो नाम सप्तमः सर्गः ॥७॥

अथ अष्टमः सर्गः ॥

सोपानपङ्क्ताविव न स्खलन्ती प्रभञ्जनस्कन्धपरंपरायाम् ।
उत्तीर्य नक्षत्रपथादथासौ भूमण्डलं मण्डलयांबभूव ॥१॥
शैलार्णवद्वीपदिगन्तराणां नवोत्तरं विंशतिमात्रमुर्वी ।
अस्यामियन्त्यां कति सन्तु तस्याः पदानि लोकोत्तरवेगवत्याः ॥२॥
अस्मिन् हरेर्जन्मपरंपरेति वर्षोत्तमं भारतमादरेण ।
सपत्तनग्रामगृहं मुहूर्तात् सर्वज्ञसंवित्सदृशी ददर्श ॥३॥
यदा पुनः पाटलिपुत्रकाशिकाञ्चीकुरुक्षेत्रकुशस्थलीषु ।
नापश्यदश्रान्तगतिस्तदानीं महापुरीमुज्जय(? यि)नीं जगाम ॥४॥
तस्यां च नारायणपादपूतं यदङ्कपादं कवयो वदन्ति ।
गुरोर्गिरा तत्पदमत्यजन्तौ ददर्श संकर्षणवासुदेवौ ॥५॥
विघ्नं विना प्राणसमेन सार्धं युवां किल द्रक्ष्यति नः सखीति ।
तया यदभ्यर्थितमादरेण तयोर्विशेषादुपयाचितं तत् ॥६॥
अथान्यदन्यन्नगरं पुरं च ग्रामं च गेहं च तदन्तरं च ।
अन्वेषयन्त्येव विनानिरुद्धमन्धेव साध्वी चिरमित्यशोचत् ॥७॥
ईदृग् दशा संप्रति मे खलायास्तादृक् च तस्याः श्लथमेखलायाः ।
जातास्मि निष्पन्दमना दरेण विजृम्भते दैवमनादरेण ॥८॥
मनोजबाधा शमिता न तस्या मनोजवास्मीति वृथा प्रसिद्धिः ।
विनोदकं सा तमवीक्ष्य बाला विनोदकं शुष्यति पद्मिनीव ॥९॥
धीरेव मूढा विफलं भ्रमामि धीरेवमूढा तु न यद्वयस्या ।
महाशया मत्कृतयैव नूनं महाशया तिष्ठति सा नतभ्रूः ॥१०॥
आलोकितं विश्वमशेषमेतत् तथापि दृष्टा वसतिर्न विष्णोः ।
प्रायेण वैकुन्त(? ण्ठ)वदेव सर्वं सुदुर्लभं तत्पदमस्मदादेः ॥११॥
किमग्रतः पृष्ठत एव किं वा किं दक्षिणं वाममथ व्रजामि ।
स्थानेऽपि धीरित्यनवस्थिता मे जाता चतुर्वातहता लतेव ॥१२॥
व्यावृत्त्य किं यामि पुनः कथं वा गत्वा तदाशामपि संहरामि ।
आशा हि कृच्छ्रागतजन्तुमाता को नाम तस्कृत्स्नगुणप्रमाता ॥१३॥
आशा पतन्मन्मथबाणविद्धवियोगिनीरक्षणपारयित्री ।
आशा जरत्कर्पटखण्डखिन्नक्षोणीश्वराराधनधारयित्री ॥१४॥

---

१. 'सख्याः' इत्यपि पाठः ।

प्राणेश्वरप्राणमहाभयेऽपि मग्नत्तमश्रुभसरं हरन्ती ।
सखीव नानाविधसंविधानैराशाऽथ सत्कारमपाकरोति ॥१५॥
कल्पान्तवातोद्धतधूयमानतरंगभङ्गक्षणभङ्गुरेऽस्मिन् ।
आशा यदि त्रुट्यति हन्त जन्तोः किं नाम तज्जीवति जीवलोके ॥१६॥
अथापि तां कण्ठशिरायमाणां नैराश्यखड्गेन सखीं लुनामि ।
मृतापि पापे परतो भवेति किं धिक्कृता नारकिकैः प्रवक्ष्ये ॥१७॥
दिङ्मोहिनामस्ति मतिप्रमोषः पोतापयाने पवनस्य दोषः ।
मनोजवं यानमदूषिता धीः सोऽस्त्येव लोकेषु किमुत्तरं मे ॥१८॥
यः स्वामिसंभावितकार्यसिद्धिरसिद्धकार्योऽपि विहस्य पृष्टः ।
अधोमुखोऽनुत्तरदानमूकः स चेज्जनो जीवति को विपन्नः ॥१९॥
अतो न गन्तव्यकथैव तस्मिन् यस्मिन् सुहृद्द्रोहमहाकलङ्कः ।
स्थातव्यवार्तैव कथं नु तस्मिन् यस्मिन्नुषादीर्घवियोगदाहः ॥२०॥
दाहव्यथैव ज्वलनप्रपाते जलप्रवेशे श्वसितव्यथैव ।
उषावियोगे द्वितयार्थिनी तु पश्यामि तौ वाडववारिराशी ॥२१॥
ततस्तदीया सहसैव दृष्टिर्निपत्य पूर्वेतरतोयराशौ ।
अत्यायतत्वादतिनिर्मलत्वाज्जिगाय सारस्वतपूरशोभाम् ॥२२॥
अस्मिन्नशेषार्तिहरे निपत्य निद्रास्यते दीर्घतरं मयेति ।
तं मातुरुत्सङ्गमिवातिवेगाज्जगाम हर्षाश्रुतरंगिताक्षी ॥२३॥
हेमाचलाहंकृतिवर्धमानविन्ध्याचलात्युन्नतरैस्तरंगैः ।
तं खर्विताकाशमपि प्रशान्तमालोक्य चक्रे हृदि चित्रलेखा ॥२४॥
न केवलं वारिभिरुत्तरंगैर्मर्यादयाप्येष जगद्गरीयान् ।
कुतोऽन्यथा मुञ्चति जीवलोकमाचान्तदिक्चक्रनभस्तलोऽपि ॥२५॥
लिहन्निव व्योम पिबन्निवाशाः खादन्निव क्ष्मातलमुत्थितो यः ।
स्यात्सोऽपि नोल्लङ्घ्यमितो मयेति दत्तेव रेखाऽस्य तटे तरंगः(ङ्गैः) ॥२६॥

---

१. सप्तदशश्लोकस्यानन्तरं प्रान्ते प्रक्षिप्तोऽयं श्लोकोऽधिक उपलभ्यते—

"तदस्य तस्याः कुलदीपिकायाः स्थितेरसाधारणकारणं ताम् ।
दशामिवाशामवलोपयन्ती कर्तास्मि नाकस्मिकमन्धकारम् ॥१८॥"

२. 'यास्यामि' इति पाठान्तरम् ।

कस्यापरस्यापरपारयानसामर्थ्यमस्यास्ति जगत्त्रयेऽपि ।
देवोऽप्यसौ सप्ततुरंगकेतुरर्वाक्तरे मज्जति यस्य तीरे ॥२७॥
सद्यः पतद्वज्रभयातिरेकादधोऽप्यधस्ताद् गिरयो व्रजन्तः ।
नाद्यापि पर्यन्तमवाप्नुवन्ति त्रासस्य तस्यास्य च वारिराशेः ॥२८॥
स्यादेष नोर्ध्वं यदि तत् क्व दृष्टिरधो न चेत् तत् खनतां क्रिमम्भः ।
प्रत्यक्ष एवायमशेषदिक्षु यदन्तरं तच्च वियद् वदन्ति ॥२९॥
और्वानलेनाप्युदरस्थितेन मन्दाग्निरेष ध्रुवमम्बुराशिः ।
कुतोऽन्यथा मौक्तिकसिक्थमिश्रं वेलाच्छलादुच्छलतीदमम्भः ॥३०॥
अनादिकालं ज्वलतापि कोपादपि त्रिलोकीदहनक्षमेण ।
तेनापि चित्रं वडवानलेन कदुष्णमप्यस्य कृतं न वारि ॥३१॥
क्रमेण कालद्वयहेतुभूतमुदेति रत्नद्वितयं यदस्मात् ।
तत्रैकमुष्णद्युतिमामनन्ति शीतद्युतिं वाच्यमुदाहरन्ति ॥३२॥
कष्टं यदस्याखिलसंनिवेशप्रेक्षारसो जीर्यति चित्त एव ।
यस्यान्यदिग्दर्शनमन्यजन्मतुल्यं शरीरान्तरलभ्यमेव ॥३३॥
इत्थं पयोराशिकुतूहलेऽपि प्रवर्तमाने हृदि वर्धमानः ।
सेहे न तस्याः शिथिलायमानं विमानवेगं मरणाभिलाषः ॥३४॥
अथादिशन्त्येव जवात् तदानीं शरीरमौर्वाय हविर्भवेति ।
सद्यः पुरस्ताज्जितमर्त्यलोकपाताललीलां नगरीं ददर्श ॥३५॥
मध्येपयः पञ्चषयोजनस्थामास्थानभूतां रमणीयतायाः ।
कलेर्भयाद् दुस्तरतोयराशिदुर्गप्रविष्टामिव भूतधात्रीम् ॥३६॥
समुद्रपानागतवारिवाहव्यूहायमानोपवनान्तलेखाम् ।
सर्वत्र माणिक्यसुरालयेति स्वर्गायमानाखिलसंनिवेशाम् ॥३७॥
अनेकसंख्यैः परिसंचरद्भिः पोतैरुपेतां परिणाहवद्भिः ।
हरेर्बलाद् वज्रभयं विहाय तरद्भिरब्धाविव पक्षशैलैः ॥३८॥
तां वीक्ष्य दध्यौ जगदप्यवेक्ष्य नोपेक्षितव्यं पदमात्रमेव ।
तत्रैव तद् वस्तु यदि स्थितं स्यादुपेक्षमाणेन हतस्तदात्मा ॥३९॥
भागत्रयाणां जगतां धरित्री द्वीपानि तस्यामथ मण्डलानि ।
तेष्वेकखेटैकगृहैकदेशे वितस्तिमात्रस्थितिरीश्वरोऽपि ॥४०॥
अन्विष्य तु क्षिप्रतरं तदस्यामयं जनस्तं जनमादरेण ।
विभाति मृत्युव्रतभङ्ग एव यदीयलाभे परमं यशो मे ॥४१॥

द्विधाप्ययं मे विपदन्त एव तथापि तद्दर्शनमेव पूर्वम् ।
त्रपा भवित्री न परं मृतायाः स्वैरं चरित्री तु जगत्यकीर्तिः ॥४२॥
गत्वाऽथ बाह्योपवनप्रदेशं विमानमादिश्य तिरोभवेति ।
विधाय च प्राकृतमेव वेषमुद्यानपालीसविधं जगाम ॥४३॥
ततस्त्वरापूरमपारमन्तर्नियम्य विश्रम्य च संनिधाने ।
मुहूर्तसांगत्यसपक्षपाताः प्रचक्रमे प्रष्टुमनाकुलं ताः ॥४४॥
दूरादहं दुष्पवनोपनीतपोतप्रसङ्गोपगताऽस्मि सख्यः ।
तद् ब्रूत केयं नगरी गरीयः कुतूहलं मे कतमोऽत्र भर्ता ॥४५॥
ततः शिरस्यञ्जलिमादधानाः शून्येऽपि ताः सप्रणिपातमूचुः ।
देवाधिदेवस्य हरेः पुरीयं ख्याता भुवि द्वारवतीति नाम्ना ॥४६॥
प्रमोदनीकाममपि क्षरद्भिस्तैः कोकिलालापकलैर्वचोभिः ।
लतेव बालाङ्कुरकोमलेन रराज तन्वी पुलकोत्करेण ॥४७॥
उक्तं च सप्रश्रयमानताङ्ग्या तत् प्रेष्यतामेप जनो वयस्याः ।
श्रुतं मया पूर्वमिदं यदस्यामास्ते वयस्यापतिरस्मदीयः ॥४८॥
अनाकुले चेतसि च प्रतस्थे प्रहर्षवारां भरमुद्वहन्ती ।
प्रवालदोलायिनि वाति वाते विश्रब्धमम्भोधरमण्डलीव ॥४९॥
प्रतिष्ठमाना च ददर्श तुङ्गपूगाग्रदोलागतपुष्पलावीः ।
गीतानुरक्तैरिव दिव्यमर्त्यैर्दिवं भुवं च प्रतिकृष्यमाणाः ॥५०॥
गोपाङ्गनावेषरुचेर्मुरारेस्तत्तुल्यवाल्लभ्यमपेक्ष्यमाणाम् ।
नितम्बलग्नासितवाससेव वप्रानुयातेन लतावनेन ॥५१॥
महाब्धिमन्थादुपजायमानपातालयानप्रतिबन्धबन्धोः ।
हरेश्चिरोत्कण्ठितमन्दराद्रिप्रसारितनेव भुजद्वयेन ॥५२॥
संस्मृत्य देवस्य गदाधरस्य शेषाहिणेवार्णवनिर्गतेन ।
तस्यैव सेवावशवर्धितेन धर्माचलेनेव पुरप्रजानाम् ॥५३॥
आगत्य दोःपञ्जरचूर्णितेभ्यश्चाणूरकंसादिमहासुरेभ्यः ।
पार्श्वस्थितेनेव यशोभरेण शालेन ञ्चरितदिग्विभागाम् ॥५४॥
उद्ग्रीववद्श्यामलरत्नहारिहिरण्मयाट्टालकभासुरेण ।
मुरारिसेवावसरप्रतीक्षैरुपास्यमानामिव देवयानैः ॥५५॥
अस्यां स तस्याः किल तिष्ठतीति गुणैरसंख्येयगुणायमानैः ।
तामेव तत्कालविलोक्यमानामन्यामिवामन्यत राजधानीम् ॥५६॥

---

१. '°दमन्तः क°' इत्यपि पाठः । २. 'सा वीक्ष्यमाणा न जगाम तृप्तिं' इति पाठान्तरम् ।

ताम्बूलवल्लीदलमालितेन मूर्ध्ना दधानं फलभारमुच्चैः ।
स्वर्गेऽपि ताम्बूलमिवोपनेतुं पूगीवनं वर्धत एव यस्याम् ॥५७॥
अधो विधायापि शरत्पयोदानुत्थाप्यमानाः सुरसद्मसंघाः ।
[1]ने चक्रिरे यत्र जनस्य तृप्तिमद्यापि यानोपरि मन्दिरेभ्यः ॥५८॥
नीलाश्मवेश्माग्रपरंपरायां स्वर्णावदाताः सुरलोकबालाः ।
पयोदतत्यां तडितः किलेति कुर्वन्ति यत्रत्ययुवाभिसारम् ॥५९॥
रसैः स्फुटैरर्थसमैर्वचोभिरर्थैरपूर्वैः सदलंक्रियाभिः ।
[2]ददर्श तस्यां रघुमाघबाणव्यासायमाना व्यवहारवीथीः ॥६०॥
दूरं चतुर्द्वारविनिर्गतेन वीथीभुजापाशचतुष्टयेन ।
[3]हठादिवाकृष्टदिगन्तनाथनत्याकुलं राजकुलं ददर्श ॥६१॥
ग्रासीकृतादन्यतरं धुनानः प्रवालमालोकयत राजदन्ती ।
निजांह्रिभारश्रममूर्च्छितायाः कुर्वन्निवोर्व्याः पवनोपचारम् ॥६२॥
सेवागतां वीक्ष्य हरेस्त्रिलोकीं कोपस्तयोर्वीं प्रति गूढमूढः ।
पाप त्वमेकासुरभारभीरुः सहस्व भारं भुवनत्रयस्य ॥६३॥
[4]दृष्टे बलिद्वेषिणि रोषतप्ता दृष्टे वरे च प्रमदाम्बुसीता ।
तद्दृष्टिरिन्द्रुदयनष्टभास्वत्तापस्य लेभे कुमुदस्य लक्ष्मीम् ॥६४॥
प्रस्वापनीति प्रथितामथासौ संस्मृत्य सद्यः कुलसिद्धविद्याम् ।
दंष्ट्राऽनिरुद्धं हरिणापि रुद्धं चकार कूष्माण्डसुता प्रतिज्ञाम् ॥६५॥
प्रद्युम्नवीरस्य पुरोऽपि पुत्रं नप्तारमग्रेऽपि गदाधरस्य ।
उपामनस्तस्करमद्य बद्ध्वा नेष्यामि सत्यं यदि चित्रलेखा ॥६६॥

स्फुरति तमसि सद्यः का कथैवापरेषा-
मपि भगवति सुप्ते जालमार्गप्रविष्टा ।
स्मृतकनकविमानोत्सङ्गसुप्तानिरुद्ध-
द्युतिखचितदिगन्ता स्वां गता राजधानीम् ॥६७॥

इति भट्टलक्ष्मीधरकृतौ चक्रपाणिविजये महाकाव्ये चित्रलेखागमनं[5]
नाम अष्टमः सर्गः ॥८॥

---

१. 'अद्यापि नैते भुवनोपरीति चक्रुश्चिकीर्षाविरतिं न यस्याम्' इति पाठान्तरम् । २. 'विवेश यस्यां' इत्यपि पाठः। ३. 'भुवापि चा–' इति वा पाठः । ४. 'सावज्ञदृष्टि-र्मुशले हले च' इति पाठान्तरम् । ५. 'अनिरुद्धहरणम्' इति वा नामान्तरम् ।

अथ नवमः सर्गः ॥

अर्धयामसमये च वधूनां चामरव्यतिकरादनिरुद्धः ।
बोधितः प्रचलबाहुमृणालीलोलकङ्कणज्झणत्करणेन ॥१॥
स्वं न किंचिदपि केवलमग्रे स्त्रं ददर्श सहसा युवराजः ।
सप्तमीमधिशयानमपूर्वां पर्वतप्रतिममन्दिरभूमिम् ॥२॥
केह मन्दिरमिदं क च शय्या क्वाहमद्य महती क च निद्रा ।
इत्यनेकपवनाम्बुदकल्पैस्तन्मनोन्तरुदपादि विकल्पैः ॥३॥
नेन्द्रजालमुपभोगसमर्थं स्वप्नसंविदविलम्बसहैव ।
भोगयोग्यमखिलं पुनरेतन्नित्यबोधविषयं च विभाति ॥४॥
हेलयैव हरता तदवश्यं केनचिद्‌ बलवदग्रसरेण ।
जानतामखिलवैरिभटानां काष्ठपुत्रकदशां गमितोऽस्मि ॥५॥
को हरत्यथ किमप्यसुरारेः कस्य वा दश शिरांसि जगत्याम् ।
सोऽप्यदः श्रुतदशाननवार्ताः कर्तुमिच्छति यदीच्छति मर्तुम् ॥६॥
के च ते दितिसुतप्रवराणां ये हरन्ति हरिसूनुतनूजम् ।
यत्‌ तदन्वयनिरन्वयनाशे तातवर्जमपरो न कृतान्तः ॥७॥
त्रीणि तस्य नयनानि यदि स्युर्बाहवो यदि सहस्रमरातेः ।
सोऽप्यतो मदपहारदुरुक्ताच्चक्रिणा कृपणतामपनेयः ॥८॥
संभवत्यथ मदानयनेन द्वेषिणां मुरजिता सह संधिः ।
योषितीव विधृते मयि तर्हि श्मश्रुराजिरियमद्य विडम्बः ॥९॥
सृष्टिसंहरणघस्मरशक्तेः का कथाप्यथ जगत्त्रयभर्तुः ।
तत्प्रसादजयिनाद्य मयापि क्षिप्यतामहितमूर्ध्नि कृपाणः ॥१०॥
किं वचोभिरथ वीरचरित्रं शून्यगर्जितविवर्जितमेव ।
वाच्यमन्यपुरतोऽपि न सत्त्वं खड्ग एव कथयिष्यति तत्त्वम् ॥११॥
वेद्मि सद्मपतिमेव हि तावद्‌ वेद्मि तस्य विनयापनयौ च ।
ज्ञाननिस्तुपि(? लि)तवस्तु वदन्तः प्राकृते पथि पतन्ति न सन्तः ॥१२॥
तत्‌ किमेतदिति निर्णयहेतोराहितावहितकर्णपुटेन ।
श्रूयते स्म सविषादसहर्षव्याकुलस्थिरसखीद्वयगोष्ठी ॥१३॥
रत्नदीपवति धाम्नि कुतोऽग्निः स्नानयोग्यजलमम्बुगृहान्तः ।
क व्रजामि बत वर्षवराणां किं न तर्कयति धीः पिशुनानाम् ॥१४॥

प्राणसंशयशुचा यदुपायास्त्याजितं तत्र मनः स्मरणादीन् ।
तद्विवाह इति संप्रति हर्षस्तत्र ते तु बहिरेव वराकाः ॥१५॥
तेन राजकुल एव वसन्त्या विस्मृतं नियतमद्य भवत्या ।
अस्ति कारणमिहैव हि वह्नेः स्नानयोग्यजलयुक्तिरिहैव ॥१६॥
अस्त्युषाश्रवणभूषणरत्नद्वन्द्वमिन्दुरविनाम ययोस्तत् ।
एकतः सलिलमिन्दुशिलानामन्यतो ज्वलति भास्करकान्तः ॥१७॥
तन्निशम्य विदधे हृदि विद्वान् कामिमां विदुरुषेति युवत्यः ।
प्राणसंशयमवाप किमर्थं कस्य पाणिमुपनेष्यति चाद्य ॥१८॥
हन्त ते हृदय सिध्यति वाञ्छा नेच्छति त्रिजगतामपि पत्यौ ।
स्यादुषा यदि यदुप्रवराणामन्वयोचितवधूपदयोग्या ॥१९॥
ज्ञातुमेतदथ तत्र कुतस्चित् प्रान्तदत्तनयनः स ददर्श ।
बाणमन्त्रितनयामुपसन्नां चारुचामरधराश्च तदन्याः ॥२०॥
तामवेक्ष्य करुणामृतवारिस्नानशीतलवपुर्युवराजः ।
अब्रवीदवनताङ्गि किमर्थं हस्तसंगतमिदं विदधासि ॥२१॥
सा त्ववोचदतिभूमिरियं मे त्वत्पुरो यदयमञ्जलिबन्धः ।
यस्य ते चरणयोर्हरिनप्तुः सप्तलोकपतयोऽपि पतन्ति ॥२२॥
अर्थिकल्पविटपी युवराजस्तत् किमञ्जलिकथां कथयामि ।
एकभिक्षणकपात्रमिदं मे देहि जीवितफलं तदुषायाः ॥२३॥
त्वर्यतां सपदि सीदति साध्वी मङ्गलोचितमिदं च मुहूर्तम् ।
दानवेन्द्रबलिवल्लभनप्त्री पाणिमर्पयति बाणसुता ते ॥२४॥
वीक्षिता च यदि न प्रतिभाति घूतमस्ति भवता सह सख्याः ।
नन्द वत्सरशतानि तया तु प्राणितेन पणितं हरिणाक्ष्याः ॥२५॥
शीतलोऽसि निवसन्नपि चित्ते विप्रयोगपरितापिनि तस्याः ।
तद् भविष्यति चिरादपि दृष्टा क्वापि तां विलिखितामनु तापः ॥२६॥
एतदीयवचसामवसाने स्यात् किमुत्तरमिति क्षणभीताः ।
श्वासलेशमपि विस्मृतवत्यो रेजिरे विलिखिता इव सख्यः ॥२७॥
राजपुत्रतिलकस्य च तैस्तैः कन्यकागुणमयैः प्रमदानाम् ।
गाढगर्वगुरुगर्जिविशेषैर्नर्तितो मनसि मारमयूरः ॥२८॥
अब्रवीच्च बलिवंशविशुद्धं रत्नमेव दनुजेश्वरकन्या ।
वञ्चनं तु यदि वेत्ति न तन्मे मूल्यमात्रमिदमस्ति शरीरम् ॥२९॥

यस्तु मे क्षणमिवास्ति विलम्बः श्रूयतां तमपि ते कथयामि ।
वेद्मि तन्वि यदि येन हृतोऽस्मि प्रेक्ष्यबाहुमहिमा हि मया सः ॥३०॥
तन्निशम्य ददृशे स्मितलज्जावक्रितेन वदनेन वयस्या ।
एकतो जलरयाश्रितपद्मा जाह्नवीतटपयोरुहिणीव ॥३१॥
अब्रवीच्च परिहासमनोज्ञं किं कुमार तव तत्कथयेव ।
जातिरेव ननु सा दनुजारिब्रह्मशंकरवशीकरणाय ॥३२॥
हासमिश्रिततदुक्तिविचारोत्पन्नतत्करणनिर्णयतोयैः ।
क्षालितानुशयनिर्मलचेताः प्रत्यभाषत हसन् युवराजः ॥३३॥
आम वामनयने भवती यत् प्राह साहसमिदं न वदामः ।
तत् किमन्यदुपसत्तिरियं मे ब्रूहि वाङ्मिनि यदत्र विधेयम् ॥३४॥
व्यक्तमाह पुनरानतगात्री बाणमन्त्रितनया त्रिनयेन ।
अस्ति दोस्तुलितविश्व जगत्यां कः स यः सृजति साहसमेतत् ॥३५॥
स्वप्नदानविधिनात्र रजन्यां मानसं यदहरः सरलायाः ।
अह्नि सर्वयदुवीरसमक्षं स त्वमेव हि मयात्र हृतोऽसि ॥३६॥
किं तु सातिशयरूपजितस्ते दुर्धरः स्मरभटोऽस्ति सहायः ।
तद्भयोपनतबाणसुतायाः स्वेच्छया कुरु करग्रहमस्याः ॥३७॥
मञ्जुशब्दमुखरेण स रेजे पादुकायुगलकेन कुमारः ।
नीयमान इव वाक्पटुदूतीयुग्मकेन चरणानुगतेन ॥३८॥
स्वप्रभापटलपूरजितालिर्दीपिकाभिरपि रत्नमयीभिः ।
तारकाभिरिव कैरवभर्ता प्रत्यभासत जनार्दननप्ता ॥३९॥
राजहंसचलचामरसंघैर्नीलनीररुहिणीयनवर्णैः ।
कामकेलिसरसीमिव सद्यस्तां चकार सदनोदरभूमिम् ॥४०॥
चक्रिरे मुहुरुषाप्रतिहार्यस्तत्पुरो यदपसारणशब्दान् ।
तत्क्षणोत्थमदनद्विपदर्पज्ञापनापटहदानमभूत् तत् ॥४१॥
तां प्रति प्रचलितस्य पुरस्तात् तस्य ते कनकवेत्रविशेषाः ।
रेजिरे कमलिनीं प्रति रागाद् बाधिता इव करास्तिमिरारेः ॥४२॥
कामिनीचरणपङ्कजसेवासिद्धनूपुरगुरोरुपदेशात् ।
ऊचिरे चलति यादवदीपे स्वस्तिसूक्तमिव मन्दिरहंसाः ॥४३॥

---

१. 'पत्ति-' इति वा पाठः । २. 'तु' इति पाठान्तरम् ।

रत्नभूप्रकटतत्प्रतिबिम्बच्छद्मना मनसिजोऽपि तदानीम् ।
लज्जमान इव पन्नगलोकं तद्वपुर्गुणजितः प्रविवेश ॥४४॥
बाणसद्मनि जनार्दननप्तुः प्रक्रियापि ननु पूर्णतमैव ।
यो विवेश परिवारपुरोऽपि प्रौढयौवनकरिण्यधिरूढः ॥४५॥
शैशवेऽपि हि पितामहविद्यावल्लिपल्लवमवाप्यत तेन ।
एक एव यदनेकतमानां मानसानि युगपत् प्रविवेश ॥४६॥
तामतीत्य भुवमद्भुतमानं स्थानमष्टममथाधिरुरोह ।
भालपट्टघटमानमृगाङ्काशङ्कितेन शिरसा युवराजः ॥४७॥
भ्रूलताविलसितैरपि तैस्तैरस्तमुक्तविधृते परिवारे ।
प्रक्रियेति धृतकाञ्चनवेत्रां दृष्टवानथ महाप्रतिहारीम् ॥४८॥
दिव्यहारकिरणप्रसरेभ्यः कर्णकुण्डलकिरीटमहोभ्यः ।
लक्षितास्तदुपरि प्रसरन्तो नावतारणकमङ्गलदीपाः ॥४९॥
सांध्यराग इव पर्यपनीते तत्क्षणं जवनिकापटबन्धे ।
तां वरः कुमुदिनीमिव सद्यः सा तमिन्दुसदृशं च ददर्श ॥५०॥
व्याहरत् स्मरगुरुं मन एव स्नेहपात्रमभवन्मन एव ।
तत्वरे विरहपावकहस्तं तद्विवाहविधये मन एव ॥५१॥
मौक्तिकप्रकरकोरकितायामिन्द्रनीलमणिमङ्गलवेद्याम् ।
निर्मलस्फटिकपीठगतासौ विस्मितेन ददृशे दयितेन ॥५२॥
बिन्दुदन्तुरितपत्रवनान्तः पुण्डरीकवसतिः किमियं श्रीः ।
व्योम्नि तारकिनि(? णि) पाण्डुपयोदच्छेदमूर्धनि मृगाङ्ककला वा ॥५३॥
क्रान्तपाण्डुरपटोत्तरपीठः प्रत्युषामनिमिषः स जिगाय ।
हंसहारिपुलिनस्थितिगर्वं चन्द्रिकाभिमुखमूर्तपयोधेः ॥५४॥
प्राञ्जलाननसरोरुहरम्यं यत् तयोः प्रथमदर्शनमासीत् ।
गच्छतोरनु परस्परचित्तं मार्गसङ्गसदृशं ददृशे तत् ॥५५॥
तां तदातनतदाननलक्ष्मीं किं ब्रवीमि न मया खलु दृष्टः ।
संगतः सरसि वा गगने वा पर्वशीतकिरणः कुमुदं च ॥५६॥
सौरभद्वयवशादलिपङ्क्तेर्वक्त्रयोः पथि गतप्रतियातैः ।
तौ विरेजतुरनङ्गधनुर्ज्याबन्धनैरिव परस्परदत्तैः ॥५७॥
कौतुकेन बलिना ह्रियमाणा तत्वरे तदनु दृष्टिरुपायाः ।
वीक्ष्य रूपमधिकोद्धतधावन्मन्मथद्विपधृतेव पताका ॥५८॥

दृष्टवानथ स तां रतिलज्जाकारितद्रुतगतागतदृष्टिम् ।
पूर्ववातरयतोयरयान्तर्नृत्यदुत्पलदलामिव गङ्गाम् ॥५९॥
ह्रीः क्वचिन्नयतु वक्त्रमुषायाः सा पुनः प्रियतमं प्रति दृष्टिः ।
कांचिदेव दिशमञ्चतु चन्द्रः कौमुदी तु कुमुदानुगतैव ॥६०॥
मूर्त एव हि स चेतसि तस्याः सा तदीयहृदये च विवेश ।
वीक्षितं खलु परस्परवर्जं किंचिदेव न तया न च तेन ॥६१॥
रामरावणरणः कणमात्रं कर्णपार्थसमरस्तु न वस्तु ।
तत्परस्परकटाक्षनिवेशक्रुद्धकामशरपूरपुरस्तात् ॥६२॥
तत्र तादृशि तयोर्नवसङ्गे तादृशे च पुर एव वियोगे ।
उत्सवं च विपदं च विदित्वा चिन्तितं दनुजमन्त्रिदुहित्रा ॥६३॥
संगमय्य शशिनेव विशाखामीदृशेन दयितेन वयस्याम् ।
अद्यकीयरजनीव महोभिः पूर्णतामुपगतास्मि यशोभिः ॥६४॥
किन्तु कान्तसविधेऽपि कुमारी नातनोति हृदि नः परितोषम् ।
दर्शने ह्यवयवानवगाहः कामिनां मनसि मुर्मुरदाहः ॥६५॥
मानसं मनसि चक्षुषि चक्षुः संगमय्य मदनो मिथुनानाम् ।
इच्छति क्षणमसंगतमङ्गं जैत्रमन्तरमिदं खलु तस्य ॥६६॥
ह्रीनिकेतनमियं कुलबाला धैर्यवारिधिरयं च कुमारः ।
प्राणदानपरिपालितसत्त्वौ तन्न सांप्रतमुपेक्षितुमेतौ ॥६७॥
जायतां तदनयोरधुनैव प्रेयसीरमणयोरतिरम्यः ।
पाणिपीडनमहोत्सवसिद्धेरुत्तरोत्तरमनोरथयोगः ॥६८॥
कार्य एव किल केवलसत्यां सा त्रयीमपि जिगाय वहन्ती[1] ।
या स्तुतावपि तदीयगुणानां न प्रमाविषयवाङ्मवोचत् ॥६९॥
इच्छति स्म विनयेन वराकी सातिरिक्तमपि वक्त्रमुतस्वित् ।
किं तु यत् किमपि चेतसि चक्रे तत् तदीयचरितादतितुच्छम् ॥७०॥
सेत्युवाच शिरसापि धृतस्य स्यान्न गौरवलवोऽपि कृतस्ते ।
त्वं हि मूर्तिरसि तस्य यदंह्रिक्षालनं वहति मूर्धनि रुद्रः ॥७१॥
किं त्वभिन्नमुभयोरपि पित्रोः पुत्रिकेयमिति जीवितमेतत् ।
शैलराजसुतया तव दत्तं सांप्रतं पुनरनूद्यत एव ॥७२॥

---

१. 'वदन्ती' इति पाठः ।

एतया रतिरजीयत सख्या त्वं च मन्मथजयोर्जितमूर्तिः ।
तत्कुमारवर मेलय हस्तं गाढमङ्करसिक्ता हि कुमारी ॥७३॥

अथ विरहमहार्चिःशान्तिशीताम्बुधाराः
सरभसपरिरम्भप्रार्थनापूर्वदूतीः ।
अभिनवदलमृद्वीरङ्गुलीरुद्वहन्तं
कथमपि हि स तस्याः प्राप पाणिप्रवालम् ॥७४॥

गुरुतरपरितापच्छेददानैकदक्षां
तदनु दनुजपुत्रीं प्राप्य रेजे सुतेजाः ।
गगनगमनमार्गभ्रष्टगङ्गावतारे
रविरिव चिरलब्धां बिभ्रदम्भोजलक्ष्मीम् ॥७५॥

विविधमणिविचित्रे तत्र लीलाविताने
क्षितितलशयनस्थौ दम्पती तौ प्रणम्य ।
ययुरनुगतहंसश्रेणिभिर्नूपुराणां
ध्वनिभिरभिनयन्त्यस्तल्पतूर्यं वयस्याः ॥७६॥

इति भट्टलक्ष्मीधरकृतौ चक्रपाणिविजये महाकाव्ये उषाविवाहो नाम नवमः सर्गः ॥९॥

अथ दशमः सर्गः ॥

तौ कुतूहललोलानामालीनामवधीरणाम् ।
अमन्येतां सुखालोकमुखासक्तावनुग्रहम् ॥१॥

यथा तौ यत्र तत्रैव तयोर्नयनवृत्तयः ।
तथा यत्रापि तद् दृष्टिरग्रे तत्रापि तौ मिथः ॥२॥

तत् तत् कुतूहलं वृत्तमेतदेतच्च वर्तते ।
एतदेतच्च भावीति त्रिकाली तन्मयी तयोः ॥३॥

तौ यथाग्रे दृशस्तद्वदन्योन्यं मनसि स्थितौ ।
मानयामासतुः सङ्गद्वैगुण्यमिव कामिनौ ॥४॥

व्रीडावलितनेत्रापि मनस्तन्वी न कर्षति ।
शङ्के तत्प्रियसर्वस्वं शून्यं नोज्झति मानिनी ॥५॥

साचिस्थितापि रोमाञ्चैः प्रिये प्रीतिमुवाच सा ।
दक्षिणे मरुति प्राप्ते लतेवाङ्कुरजालकैः ॥६॥

अपाङ्गोत्सङ्गितस्तस्य लेभे दृष्टिलवः श्रियम् ।
अमृतोर्मिरुत्क्षिप्तो लुठन्निव तटे शशी ॥७॥

तद्दृष्टिरनिरुद्धस्य प्रतिदृष्ट्या पराङ्मुखी ।
अराजत पयोराशेर्वेलयेव सुरापगा ॥८॥

सा निनिन्द रथाङ्गीव रघुशापसरस्वतीम् ।
प्राणेश्वरसमीपेऽपि विप्रलम्भकरीं त्रपाम् ॥९॥

अथ वक्त्राम्बुजक्रोडक्रीडद्वाक्यमधुव्रता ।
उषःश्रीरिव संप्राप्ता तत्प्रीतिसदनं सखी ॥१०॥

तामेवावसरप्राप्तां भित्तिमादाय सा ततः ।
नानावचनचित्राणि रचयामास वाङ्मिनी ॥११॥

जाह्नवीव पयोराशेस्तवेयं सौम्य संमुखी ।
हिमाद्रिबलिना रुद्धा साध्वसेन सखी मम ॥१२॥

इत्थमैरावणेनेव स्थाने क्रुद्धं मनोभुवा ।
किं तु निःशेषमेषैव मदान्धेनोपर्दिता ॥१३॥

नलिनीव तनुः सख्याः कम्पते कथमन्यथा ।
उत्कण्ठावीचिवेगोऽस्याः किंनिमित्तं च वर्धते ॥१४॥

दीर्घनिःश्वसितोच्छ्वासतरंगतरलाङ्गयोः ।
दोलाकेलिरिवाकाण्डे कथं स्तनरथाङ्गयोः ॥१५॥

कथं वा त्वन्मयध्याननिष्पन्दे च विलोचने ।
जाते तत्कालकल्लोलखिन्नमीनमनोहरे ॥१६॥

निःश्वासपवनोद्धूतः स्तनोपरि कथं पटः ।
कल्लोलतरलः कूले डिण्डीर इव दृश्यते ॥१७॥

इत्युक्ते यत् तया दृष्टिः कुञ्चितभ्रूतटे धृता ।
सज्जिताज्येव चापान्ते षाट्पदी मदनेन सा ॥१८॥

कुमारस्य तु साटोपतत्कोपखरशाणिताः ।
जाताः कुसुमबाणस्य बाणाद् द्विगुणदुःसहाः ॥१९॥

ततः सदर्पकन्दर्पबन्दिन्येव विदग्धया ।
अवादि वक्तृषु प्राप्तरेखया चित्रलेखया ॥२०॥
मातितानय तन्वङ्गि तादृशीनां हि शासिता ।
देवः समस्तशौण्डीर्यभञ्जनोऽस्ति मनोभवः ॥२१॥

भ्रुवौ तव वितन्वाते यदजस्रनतोन्नतीः ।
सा त्वमुभयतस्तेन ताडचसे चापलेखया ॥२२॥
अथोक्तमनिरुद्धेन स्मरज्वरजडाक्षरम् ।
चित्रलेखे न जानासि यदर्थोऽयमुपक्रमः ॥२३॥

हृते मदर्थमस्त्राय स्मितपुष्पे मनोभुवा ।
लताया इव ते सख्याः कम्पतेऽधरपल्लवः ॥२४॥
तथेयमुज्ज्वला दृष्टिर्नित्यमपक्ष्मारुणा ।
मां भित्त्वा निर्गतानङ्गभिल्लभल्लीव लक्ष्यते ॥२५॥

अथ सत्यपि संतोषे रुषेवोक्तं वयस्यया ।
अनिरुद्ध तवाग्रेऽपि सखी नः परिभूयते ॥२६॥
करोति कणशः कामं मनोऽस्या मदनः शरैः ।
त्वं तु ख्यातचरित्रोऽपि शरीरमपि रक्षसि ॥२७॥
प्रद्युम्नतनयोऽप्याह स्मितमांसलया गिरा ।
चित्रलेखे जितं सत्यमेतया ते वयस्यया ॥२८॥
यौवनद्विरदारूढा दूरे तावदियं प्रिया ।
अस्याः पदातिमात्रेण कामेनापि वयं जिताः ॥२९॥
तदस्याः स्पर्शपीयूषनिष्यन्दि चरणद्वयम् ।
प्रणिपत्य मया कार्यमशेषाङ्गसमर्पणम् ॥३०॥
अथातिसरसाप्यन्तर्बहिः परमनीरसा ।
बभौ सरस्वती सख्याः साक्षादिव सरस्वती ॥३१॥
न स्थेयं युवयोरन्तरन्योन्यं कामकारिणा ।
तत् त्वया प्रियसख्या च रोचमानं विधीयताम् ॥३२॥
ततः सा त्वरे तद्वद् यथा दूरतरं गता ।
स्थितादुपरिकक्षस्य बहिरेवाहितश्रुतिः ॥३३॥

---

१. 'रिंथ' इति वा पाठः ।

अथान्या अपि तत्पार्श्वमेत्य कन्याः शनैः शनैः ।
समं काण्डपटेनैव गाढं स्यूता इव स्थिताः ॥३४॥
अङ्गुलीयकवज्राणां भेदिभिः कोणकण्टकैः ।
चक्रिरे ताः शतच्छिद्रं परपक्षं दिदृक्षया ॥३५॥
तदेकदृष्टिनिश्चेष्टदैत्यकन्याकुटुम्बकम् ।
पराङ्मुखमिवालेख्यविज्ञानं ददृशे बहिः ॥३६॥
अथ दन्तद्युतां दाम्नां प्रेयसीवदनश्रियः ।
आरात्रिकमिवातन्वन्नुवाच विहसन् युवा ॥३७॥
नर्तयन्तीव गौराङ्गि सख्यस्त्वामेवमन्वहम् ।
सहोत्था अपि वैषम्याज्जाह्नवीमिव वीचयः ॥३८॥
मलयानिलवीच्येव लता [निय]तिचञ्चलाः ।
भज्यमानाः पराङ्मुख्यः सेव्यन्ते तदपि त्वया ॥३९॥
धिगेताः कृतमेताभिर्विधेयः संनिधावहम् ।
अनुकूलं विजानीहि मामेवात्मपरिग्रहे ॥४०॥
हृदयं हृदयस्यासि जीवितस्यासि जीवितम् ।
कूटोपकरणप्रायमिदमङ्गं तु मे कृतम् ॥४१॥
न हि सन्ति न मे तन्वि तव सेवामनोरथाः ।
उपायमनपायं च न पश्यामि करोमि किम् ॥४२॥
पादौ पङ्केरुहाकारौ कथं संवाहयामि ते ।
ज्वलत्कामकठोराग्नितप्तहस्तमवेहि माम् ॥४३॥
रचयामि शरीरं ते कथं सुरभिचन्दनैः ।
तैरप्यन्तरितं वेत्ति कृपणा नयनद्वयी ॥४४॥
कथं वा पृष्ठमास्थाय केशान् संयमयामि ते ।
त(? त्व)न्मुखालोकवन्ध्यस्य वृथा भवति मे क्षणः ॥४५॥
दर्पणं नार्पयिष्यामि तत्र हि त्वन्मुखेऽपि ते ।
दृष्ट्वा क्षणगतां दृष्टिमभ्यसूया प्रवर्तते ॥४६॥
तदालोकनहेतुत्वादुपकर्त्रेऽपि चक्षुषे ।
उषे निमेषदोषेण कामं कुप्यति मे मनः ॥४७॥

त्वामेव ध्यायते नित्यं त्वामेव जपते सदा ।
मनसे दातुमिच्छामि विषयग्रामशासनम् ॥४८॥
मद्दर्शनविकाशीति ज्ञातनीलाब्जसौहृदम् ।
आश्वासयतु मे चक्षुरेष ते मुखचन्द्रमाः ॥४९॥
अथ सा गोपयामास यत्र यत्राननं ह्रिया ।
तत्र तत्र कुमारोऽपि रोपयामास लोचने ॥५०॥
यदा तु निह्नुतिस्थानमन्यत् किल न विद्यते ।
तदासौ तदुरस्येव निवेशितवती मुखम् ॥५१॥
उषासंस्पर्शपीयूषपूर्णे तुलितवाडवः ।
अवर्धत परं कामः कुमारहृदयार्णवे ॥५२॥
नवत्व(? त)द्वदनोदस्तकूटन्यस्तोर्ध्वकैतकैः ।
प्रियस्य हृदये लग्नमनङ्गविशिखैरिव ॥५३॥
अथाङ्गुलिदलद्वन्द्वदरोन्नमिततन्मुखः ।
ससर्ज बाणकन्यायाः कर्णामृतमिदं वचः ॥५४॥
लघुबाहोर्न शीतांशुरस्ति मे हस्तगोचरः ।
उत्तारणीयमेणाक्षि कतमेन करोमि ते ॥५५॥
तदङ्गलतिकापुष्पं मन्मानससरोरुहम् ।
न मे त्यजति तन्वङ्गि त्वन्मुखं दृष्टिषट्पदी ॥५६॥
निष्कलङ्कं न चन्द्रेण नाम्भोजेन सदोज्ज्वलम् ।
उषे त्वन्मुखनिर्मातुः किमुपादानकारणम् ॥५७॥
इच्छासदृशमेतस्य करोमि कठिने कथम् ।
आनन्दमीलिताक्षस्य दृष्टिसौख्यं विलम्बते ॥५८॥
गोष्ठीव्याकुलव(? वी)क्षस्य तदप्यथ कुतो मम ।
उषे नीतोऽस्मि कार्पण्यममुना वदनेन्दुना ॥५९॥
ध्यायन्तु योगिनो ब्रह्म पिबन्तु विबुधाः सुधाम् ।
ते सर्वे पूर्वपक्षो नः सिद्धान्तस्तु तवाधरः ॥६०॥
आः कष्टं दुष्टकन्दर्पो हस्तवर्तिनमद्य माम् ।
पूरयिष्यति निःशेषं बाणैस्तूणमिवात्मनः ॥६१॥
निखातमिव तन्वङ्गि त्वयि मे निश्चलं मनः ।
स्वेच्छं गच्छतु देवस्य पञ्चेषोः स्थिरलक्षताम् ॥६२॥

वचोभिरथ तैर्भर्तुरलं ज्वलितमन्मथैः ।
सा वराकी विलीनेव शुद्धस्नेहमयी वधूः ॥६३॥
अथ दृष्टास्तदङ्गेषु सद्यः स्वेदोम्बुबिन्दवः ।
जगज्जेतरि तद्रूपे मुक्ता इव सुरैः स्रजः ॥६४॥
आविर्भूतं च निःश्वासैस्तप्तदीर्घैर्मृगीदृशः ।
अन्तःकुपितकन्दर्पसर्पफूत्कारदारुणैः ॥६५॥
अङ्गभङ्गेन सा रेजे तिर्यगुल्लासितस्तनी ।
आवर्तभ्रान्तरक्ताह्वयुग्मरम्येव जाह्नवी ॥६६॥
त्रुट्यत्कञ्चुकसूत्रायास्तस्यास्तमभिवल्लभम् ।
उच्छ्वासच्छद्मना दूरं धावितेव स्तनद्वयी ॥६७॥
रोमाञ्चव्यपदेशेन स्पर्शविच्छेदभीतया ।
कीलितानि तया भर्तुरङ्गान्यङ्गैर्मृगीदृशा ॥६८॥
अहो चित्रं गलन्नीविव्याजेन हरिणीदृशः ।
आकृष्टं स्मरचौरेण भर्तुरग्रेऽपि कर्पटम् ॥६९॥
एवमादिषु केनापि नाकृष्टः स तथा यथा ।
गूढस्मरज्वरायासस्तनितेन तनीयसा ॥७०॥
अप्येकभूतयोः काममङ्गेन हृदयेन च ।
न ददाति तयोः सौख्यमक्षान्त्यैव मनोभवः ॥७१॥
आहंपौर्वेण कुर्वाणौ बाहू बाहुलतान्तरे ।
तौ पार्श्वद्वयसंस्पर्शतृष्णया कृपणीकृतौ ॥७२॥
न विना यच्च पर्यायमोष्ठपानं प्रवर्तते ।
तेनैव धुरि दुःस्थानां स च सा च मृगेक्षणा ॥७३॥
यच्चासङ्गं न संसङ्गश्चेतसोरिव चक्षुषोः ।
तेनैव विरहावर्तपतिते इव ते उभौ ॥७४॥
परस्परभरन्यासमिश्रीभूतशरीरयोः ।
संगमः स तयोरासीद् गङ्गासागरयोरिव ॥७५॥
तौ विरेजतुरन्योन्यं बाहुपाशवशीकृतौ ।
स्वयं दत्तात्मदोषेण बद्धाविव मनोभुवा ॥७६॥
गाढोत्कण्ठाहठाश्लेषनिरुच्छ्वासशरीरयोः ।
तच्चेत् स्पर्शामृतं न स्याज्जीवितव्यं कुतस्तयोः ॥७७॥

इत्थं कुमुद्वतीचन्द्रनीरन्ध्रप्रेमबन्धयोः ।
प्रभाता जाग्रतोरेव सा तयोः पुण्ययामिनी ॥७८॥

स्थगयतु कथमास्यं व्रीडितोऽप्यद्य तात-
स्तदपि बत विदीर्णं गोत्रचारित्रवस्त्रम् ।
इति विदिततदीयोदन्तचिन्ताकुलेन
क्षणमिव हृदि कृत्वा जज्वले दानवेन ॥७९॥

अथ सरभसधावद्दैत्यकोलाहलेऽपि
प्रकृतिपरमधीरः शेत एवानिरुद्धः ।
क्षयसमयमहीयःक्षोभलोलत्रिलोकी-
कलकल इव कामं देवदेवो मुरारिः ॥८०॥

इति भट्टलक्ष्मीधरकृतौ चक्रपाणिविजये महाकाव्ये उषानिरुद्धगोष्ठी नाम दशमः सर्गः ॥१०॥

अथैकादशः सर्गः ॥

अथातिदर्पोद्धतपादपातमापेतुरापीवरबाहुदण्डाः ।
कुमारकोपादपि मन्दिरं तदुत्खाय खादन्त इवासुरौघाः ॥१॥

रे रे क यासीति सरोषमुच्चैः संतर्जितो येन यदुप्रवीरः ।
तस्य प्रतिध्वानवता तदेव प्रत्युत्तरं दत्तमिवालयेन ॥२॥

कवाटदत्तैर्मुशलप्रहारैस्ते बोधयामासुरथानिरुद्धम् ।
आसन्नशैलेन्द्रतटाभिघातैर्गुहाशयं सिंहमिव द्विपेन्द्राः ॥३॥

चक्रीव चक्रेण करोमि सद्यस्तवाद्य राहोः सदृशीमवस्थाम् ।
त्वत्खण्डितस्यास्य तु राजपुत्रीचारित्रचन्द्रस्य न मुक्तिरस्ति ॥४॥

इत्यात्मनि व्याहतविष्णुशक्तेश्चकर्ष रोषेण स दानवस्य ।
द्वारार्गलाताडितमस्तकस्य मुखेन जिह्वामिव रक्तधाराम् ॥५॥

पर्जन्यवद् गर्जति दैत्यचक्रे दृष्ट्वा नभःश्रीमलिनामुषां सः ।
सद्यः शरद्भानुरिवोग्रभावमादाय रेजे यदुराजपुत्रः ॥६॥

तदर्गलाघातमहाभयेन दृष्टं भयं भावि न दैत्यसैन्यैः ।
प्रासादतस्तूर्णतरप्रपातचूर्णीभवद्भ्यः सकलाङ्गकेभ्यः ॥७॥

---

१. 'तदुत्खातुकामा इव दैत्यसंघाः' इति, पाठान्तरम् ।

एकैकवीक्षोत्तरणेन तस्य किं नाम चित्रं गृहमालिकाभ्यः ।
नेदं यदीयस्य पितामहस्य बभूव वीक्षात्रयमेव विश्वम् ॥८॥
भ्रमद्गदावर्तिनि वर्तितेषुरागत्य दूरान्निकटे च वीरः ।
प्रकाशकायः प्रहरन् विरेजे विमुक्तसंनाह इवातिदर्पात् ॥९॥
भारो गुरुः कोऽपि निखातजङ्घे वेगोत्तरं वल्गति कोऽपि घातः ।
लेभे स्थितिं योद्धरि तत्र वीरे नेत्थं न चेत्थं भुजगाधिराजः ॥१०॥
ग्रासीकृते तत्र बले सहेलं ये चापरे तस्य पुरो बभूवुः ।
स्तोकामिषप्रज्वलितक्रुधस्ते पञ्चाननस्येव मुखे प्रविष्टाः ॥११॥
पृष्ठप्रहारानतपूर्वकायमृज्वाहतिच्छिद्रितवक्षसं च ।
रराज कंचिद् भटमुद्वहन्त्या हलीव हेमार्गलया कुमारः ॥१२॥
चक्रानुकारेण करे भ्रमन्त्या तया स जातः किल चक्रपाणिः ।
तथाहि तेनाखिलदैत्यवीराश्चानूरु(? पूर)कंसादिपथेन नीताः ॥१३॥
दूरादपि क्षिप्तगदस्तदानीं स वैरिवीरान् नहि नाहनिष्यत् ।
तद्रंहसोऽपि द्विगुणायमानस्तदीयवेगो यदि नाभविष्यत् ॥१४॥
अथ द्विषन्मूर्धसु निष्पतन्त्या रराज हेमार्गलया स वीरः ।
वक्षःपरीणाहतिरोहितद्यौरुद्दामविद्युल्लतयेव मेघः ॥१५॥
दृष्ट्वा तदाकस्मिकमानिरुद्धमुत्थानमन्तःपुरमध्य एव ।
स्मृत्वा च तां क्रूरनृसिंहवेलां थूच्चक्रिरे दानवगोत्रवृद्धाः ॥१६॥
उषामुखाब्जद्युतिदानदक्षैः कुमारमार्तण्डमहामहोभिः ।
सद्यो मधुच्छिष्टमिवासुराणां बलं विलीनं तदशेषमेव ॥१७॥
क्षणाच्च तत्कोपकृशानुवेगाद् दग्ध्वासुरग्राममसमुत्थितोऽसौ ।
मषीव सद्यः प्रससार वार्ता जनाननम्लानिमुपानयन्ती ॥१८॥
अथोरुदोर्दण्डसहस्रभारात् कथंचिदेव ध्रियमाणमुर्व्या ।
आरुह्य बाणो रथमत्युदग्रं कूष्माण्डसंवाहितवाहमागात् ॥१९॥
सर्वाङ्गसंनद्धपदातिदन्तितुरंगमागम्यचमूसमूहः ।
तमेकमालोक्य गदासहायं सावज्ञमूचे बलिराजसूनुः ॥२०॥
दूरानतोरःस्थलघातपिष्टदूरोन्नतैरावणदन्तकुन्तैः ।
तैश्चण्डसेनादिभटाचलेन्द्रैः कूष्माण्ड किं भग्नमितोऽपि चौरात् ॥२१॥
इति ब्रुवाणो वितताार बाणः क्रुद्धोऽपि कूष्माण्डवचोवकाशम् ।
स चातिदर्पोद्धुरकन्धरं तमुवाच सामैकसमुच्चयेन ॥२२॥

क एष सत्यं यदिहाद्य वीर त्रैलोक्यविद्रावणचापचिन्ता ।
न भाति कुम्भाहतिजर्जरेण करेण सैंहीचटके चपेटा ॥२३॥

अन्त(:)स्थतन्मत्सरवज्रलेपमपि श्रुनेः प्रान्तमसंमयातैः ।
वाग्वारिभिः क्षालयितुं प्रवृत्तमन्तः स्वतोऽपि स्वमसौ जहास ॥२४॥

धिग् वत्सपेटीं प्रति यष्टिकेयं मया गृहीतेति यया ललज्जे ।
मेने गदां तामथ सोपयोगां तं वीक्ष्य धौरेयमरिं कुमारः ॥२५॥

समूर्ध्वपश्चार्धचलेन दोष्णा हेमार्गलालालनदुर्निरीक्षः ।
लाङ्गूललेखोल्लिखितान्तरिक्षस्तमैक्षत व्याघ्र इव द्विपेन्द्रम् ॥२६॥

मा भूर्दलन्मा स्म नमत्फणीन्द्रो मास्मद्भराद् भ्रश्यतु कूर्मराजः ।
इतीव मत्वा ददृशे स धावन् प्रयोजनैरम्बर एव वीरः ॥२७॥

इतः पितुः पत्युरितश्च सद्यः संदेहदोलायितजीवितस्य ।
उषापि तेनाधिकसाध्वसेन गवाक्षनिक्षिप्तमुखी मृतेव ॥२८॥

चतुर्दिगाभोगविनिर्मितायां तदर्गलाताण्डवदण्डकुड्याम् ।
पतद्भिरेवोच्छलितं शरौघैः प्रवातदत्तैरिव तार्णपुञ्जैः ॥२९॥

हत्वा भटानुद्भटखड्गरश्मिज्वालावलुप्तः स यदाविरासीत् ।
प्रतिज्ञया तत् खलु पौरुषस्य प्रविश्य वक्षाविव निर्जगाम ॥३०॥

तदर्गलावर्तरयोद्धुतानि त्रस्तारिहस्तच्युतवारणानि ।
हिमानि रेजुः प्रलयान्तवातभ्रान्तानि भानोरिव मण्डलानि ॥३१॥

कुतश्चिदाच्छिद्य स विस्फुरन्तमसिं च रेजे शितिवारणं च ।
गर्जित्रसद्दानवराजहंसः सविद्युदम्भोद इव द्युलोकः ॥३२॥

उत्तोलनाताण्डवितासिदण्डव्यालोलजिह्वाजटिलीकृतेन ।
रेजे स वाताहतपत्रजालतालद्रुमाकारभृता भुजेन ॥३३॥

अक्षत्रमुक्ता अपि भेदिनोऽपि ते तस्य दैत्यद्विपतां शरौघाः ।
कर्तुं न शेकुः क्षतमात्रमेव साधोः प्रवादा इव दुर्जनानाम् ॥३४॥

खड्गाहतिद्विःकृतवारणेन्द्रमध्येन रेजे रणमेत्य धीरः ।
कवाटपट्टद्वितयान्तरेण दैत्यालयं काल इव प्रविष्टः ॥३५॥

वक्षःशिलाचूर्णितदन्तयोगादव्यग्रकण्ठग्रहलीलयैव ।
निष्पेषनिर्वाणितकुंजरस्य किं ब्रूमहे तद्भुजपञ्जरस्य ॥३६॥

महाभरन्यञ्चितदन्तिदन्तदोलायितात् प्रागपि वामपादात् ।
तत्खड्गधेनूद्धृतकन्दराणां दृष्टाः कबन्धा युधि सिन्धुराणाम् ॥३७॥
पक्षैरिव च्छन्नतमास्तनुत्रैस्तस्याग्रतो वीरपुरन्दरस्य ।
अकीर्तिसिन्धौ महति प्रपेतुः पलायमानाः करिशैलसङ्घाः ॥३८॥
मत्तेभसार्थावटलङ्घनं च पादैः प्रकीर्णास्त्रविमर्दनं च ।
तमेकमायान्तमशक्नुवद्भिः कृतानि [1]दैत्यैर्बहु साहसानि ॥३९॥
क्षयोपमे तत्र रणे स वीरः संहृत्य सैन्यं विरराज वल्गन् ।
बृहत्पदाघातनदद्धरित्रीतालेन नृत्यन्निव कालरुद्रः ॥४०॥
अथोपरि स्यन्दनपर्वतस्य धनुर्वनव्याकुलबाहुशाखम् ।
बाणद्रुमं वीक्ष्य यदोः सुतेन कृता कृपाणेऽपि कुठारबुद्धिः ॥४१॥
स मर्दितक्ष्मारजसा करेण जूटेन च क्षौमलवाञ्चितेन ।
भूस्थापितोत्थापितखड्गचर्मप्रेक्षाप्रपञ्चं रचयांचकार ॥४२॥
स एक एवैकतरस्य बाहोरेकक्षणोत्खातकृपाणसाध्याम् ।
पश्यन्नशेषामपि भूतधात्रीमवज्ञया बाणमिदं वि(? ब)भाषे ॥४३॥
मूढो भवान् बाण विडम्बनेयमद्यापि यन्नोज्झसि तीक्ष्णभावम् ।
एह्येहि पातादितरत् कुतस्ते भयं हि तीक्ष्णं त्वदनीकमेतत् ॥४४॥
उवाच बाणोऽपि भवादृशेषु प्रवर्तते पाप न भारती मे ।
दातव्यमेतेन तु दुर्धरेण शरेण शीलोचितमुत्तरं ते ॥४५॥
अध्यक्षदेवासुरसंगरोऽपि कुमारवीर्यातिशयं विलोक्य ।
विनापि घातं हृदि बाणमन्त्री शल्येन चिन्ताघटितेन भिन्नः ॥४६॥
वीरः स्फुरत्येष कृपाणपाणिर्दर्पोद्धतश्लेषसहस्रबाहुः ।
आः कष्टमन्तस्तदिदं हताशः पश्यामि रामार्जुनसंविधानम् ॥४७॥
आसन्नदर्शी पटलागमेऽपि दूरावलोकी तिमिरेऽपि लोकः ।
जात्यन्धतुल्यः पुनरेष राजा नैकप्रकारापि यदस्य दृष्टिः ॥४८॥
रटद्घटानष्टतुरंगवेगद्रवद्रथत्रस्तपतत्पदातिः ।
पश्यन्नपि व्यस्तमितः समस्तमेकोऽयमित्येव हि वेत्ति दुर्धीः ॥४९॥
एको मरुत् कम्पयति त्रिलोकीमेको जगद् दग्धुमलं कृशानुः ।
एकोऽपि कृत्स्नं ग्रसते कृतान्तः सारं हि शक्नोति नृणां न संख्या ॥५०॥

---

१. 'चित्रं तदेकासिभयादमित्रैः' इति पाठान्तरम् । २. 'भूयांस्यपि' इति वा पाठः ।

तथाप्यसौ केवलमार्द्रयैव वाचा मया संयुधि सान्त्वनीयः ।
शुष्केन साक्षादपि चन्दनेन वह्निर्ज्वलत्येव न शान्तिमेति ॥५१॥
प्रकाशमासीच्च वचस्तदीयमादीयतां वा दनुजेन्द्र मा वा ।
स्यादज्ञविज्ञप्तिरपि प्रभूणां श्रव्यैव यत्राशयशुद्धिरस्ति ॥५२॥
त्वदीयकान्तालकभेदकुप्यत्प्रसाधिकाहुंकृतितर्जितस्य ।
इहास्ति वायोरपि न प्रवेशः कुतः पुनः पादचरस्य जन्तोः ॥५३॥
तदेष मन्ये कथयाम्युषायाः समाविशच्चेतसि दुष्प्रवेशे ।
न चापि नानेतुमिमं क्षमन्ते सख्यो हि गन्धर्वसुतास्तदीयाः ॥५४॥
विना च लोकोत्तरवंशजातं न ताः पतिं संघटयन्ति तस्याः ।
दिव्यानुभावव्यतिरेकिणां च कस्त्वां रणे बाण वृणोति वीरः ॥५५॥
एकोऽपि देवस्य पुरो वराकः पदातिकर्तव्यमहानुकामः ।
तदस्य तुष्टोऽस्तु सहस्रबाहुः सत्त्वानुनेया हि महानुभावाः ॥५६॥
विचार्यतामेष विचार्यमाणः श्रेयस्करः स्यात् खलु तस्करोऽपि ।
विना विचारेण हि शासितस्य भवत्यसाधोरपि साधुवादः ॥५७॥
बाणस्तु चौरोऽयमिति प्रजल्पन्ननल्पनानायुधबद्धयुद्धः ।
चकार चित्ते सुरकन्यकानां नप्ता हरेर्नः पतिरेष्यतीति ॥५८॥
मुहुर्मुहुस्तद्गुरुमुद्गरोघैः कुमारखड्गाभिहतैः पतद्भिः ।
सस्मार वज्रक्षतपक्षतीमां(? नां) सद्यःपतत्खेचरभूभृतां भूः ॥५९॥
हतोऽपि तैस्तैरथ भिण्डिमालशूलादि[भि]र्भूरिभुजप्रमुक्तैः ।
अज्ञातघातः पदभारभूतभूकम्पमभ्येति परं कुमारः ॥६०॥
पदातिरेको बलदेवनप्ता रथी च राजा च सहस्रबाहुः ।
तथापि तस्याभिमुखस्थितेन बाणेन लब्धो दिवि साधुवादः ॥६१॥
ततः स तं बाहुसहस्रभाजं खर्जूरकीटोपममाकलय्य ।
जङ्घानिलोड्डीनपदातितन्त्रो हात्कृत्य दैत्याधिपमभ्यधावत् ॥६२॥
क्षणं च तस्यातिबृहद्भुजस्य बभूव वीरस्य रणे विलम्बः ।
मार्गेण हृष्यद्दनुजोत्तमाङ्गच्छेदोच्छलच्छोणितपिच्छिलेन ॥६३॥
दैत्योऽपि चापानि ततः सवेगमाव[ा]लयन्नम्बरलग्नमौलिः ।
रेजे मरुत्ताण्डवितोरुवंशः परंपरावानिव विन्ध्यशैलः ॥६४॥
आकर्णकृष्टिप्रसृतैः सुदूरं धनुर्भिरारोपितभल्लभीमैः ।
व्याचैर्विरेजे विकरालजिह्वैर्वक्त्रैरिव क्रोधकृतैरनेकैः ॥६५॥

क्षणाच्च तस्याधरमुत्तरं च मध्यं च पार्श्वौ च ददर्श दैत्यः ।
स चापि चर्मोदरमध्यवर्ती प्राप्तो रविर्मेघमिव प्रविष्टः ॥६६॥
ततो धनुःपञ्चशतप्रमुक्तैः पतत्रिभिः संततमापतद्भिः ।
आतोद्यमानोऽपि स फालखेलं दूरादरेः स्यन्दनमारुरोह ॥६७॥
दृष्टापविष्टागतऋक्षबुद्ध्या बाणो महासत्त्वमथाग्रतस्तम् ।
आदाय दुर्वारगदासहस्रं वनेचरग्राम इवोदतिष्ठत् ॥६८॥
अनल्पकल्पान्तपयोदमुक्ततडित्तडत्कारपरंपरेव ।
तदीयघातप्रतिघातघोषवार्तापि कर्णानिव नो भिनत्ति ॥६९॥
तेनापि किंचिन्न कृतं गदानामाडम्बरेण स्थगिताम्बरेण ।
घात्यो हि तस्याद्भुतवेगवल्गत्कृपाणधारावरणोऽनिरुद्धः ॥७०॥
दृष्ट्वा तदीयाननमीहमानास्तदातिथेयीं नवयौवनेन ।
ज्ञात्वा च तं वीरमनाजिवध्यमन्वायिता[१]ः स्वर्ललना द्विधैव ॥७१॥
जाते प्रिये जेतरि तत्प्रियायाः प्राप्ते गुरौ प्राणविपत्तुलां च ।
आनन्दधारामनुवर्त्मनैव व्यूढाः प्रणालैरिव शोकबाष्पाः ॥७२॥
बाणस्तु नानाविधबन्धवेदी गन्धद्विपेन्द्रायुततुल्यशक्तिः ।
दुर्मोचदोःपाशपरंपराभिस्तमग्रहीद् ग्राह इव द्विपेन्द्रम् ॥७३॥
नासादितस्तद्भुजबन्धनानामेकैकमुन्मोचयता यदान्तः ।
तदा स दैत्यो यदुनन्दनेन कण्ठे हठाद् गाढतरं गृहीतः ॥७४॥
कुमारदोःपीडितकण्ठदेशदृढोपरुद्धश्वसितस्य तस्य ।
सद्यो महाहेरिव दानवस्य श्लथीबभूवुः स्वयमेव बन्धाः ॥७५॥
आश्वासितः सोऽथ यदोः सुतेन तथापि तन्मर्मणि धीः शठस्य ।
ध्रुवं प्रविष्टः शरणेऽप्यसाधुर्निरीक्षते रक्षितुरेव रन्ध्रम् ॥७६॥
यदा तु तावद्भुजमण्डलोऽपि ददर्श नोत्क्षेप्तुमपि क्षमत्वम् ।
च्युतस्तदासौ तदसेः कथंचिदुत्पत्य मायातमसि प्रविष्टः ॥७७॥
सद्यस्ततो वर्षति दानवेन्द्रे नाद्यापि निर्णेतुमहं समर्थः ।
आ भूर्भुवर्लोकनिरन्तर[ा]स्ताः किं पेतुरुत्पेतुरथाम्बुधाराः ॥७८॥
अथाम्बरे बाणविषद्रुमस्य प्रवर्धमानस्य नितान्तदीर्घाः ।
जटायमानाः परितः प्रसस्रुरधोमुखक्रूरभुजंगसङ्घाः ॥७९॥

---

१. '°मन्धायिताः' इति पाठान्तरम् ।

तैः कोपलग्नैः प्रतिरोमकूपमाक्रम्य तस्यावनिपातितस्य ।
तत्कालरक्षोचितवाक्यवेश्राः समं त्रिवाचस्पतिरित्यवादीत् ॥८०॥
जीवन्नसौ दुःसहसर्पदन्तदन्ताभिघातान् सहतां दुरात्मा ।
अनेकदुःखोचितजीवितस्य सद्यो वधादस्त्यपरो न लाभः ॥८१॥
मनीषिणा तेन कुमारमृत्योः कालातिपाते विहिते कथंचित् ।
निन्ये तमात्मीयविपन्निधाने बाणोऽपि नागौघनिरुद्धमन्तः ॥८२॥

अथ निभृतमुपेत्य प्राह कूष्माण्डकर्णे
सकलमपि कुमारप्रक्रमं चित्रलेखा ।
स तु दितिसुतशत्रोः पौत्रनाम्नापि विद्धा-
नकृत हृदि कठोरत्रासचिन्ताचपेटाम् ॥८३॥
सहृदयजनचेतश्चन्द्रकान्तोचिताभिः
क्षरदमृतमयीभिः सूक्तिसच्चन्द्रिकाभिः ।
अहह विपदपारा सोऽपि यन्नामविद्धा-
न्नमिलषति मृदुत्वं दानवप्रस्तरस्य ॥८४॥

इति भट्टलक्ष्मीधरकृतौ चक्रपाणिविजये महाकाव्ये अनिरुद्धयुद्धं नामैकादशः सर्गः ॥११॥

अथ द्वादशः सर्गः ॥

अप्यपारकरमण्डलोद्धतः सप्तलोकपरितापनस्तदा ।
आश्रितोऽप्यपरिमेयमम्बरं मन्दतामुपगतो महोनिधिः ॥१॥
भर्तुरापदि पुरो भवन्ति ये ते स्फुरन्ति न तु पृष्ठगामिनः ।
आगमोऽयमन्वथा समर्थितः किंकरैरिव विवस्वतः करैः ॥२॥
चक्रवाकवयसापि शोचता मित्रमस्तमयगोचरे गतम् ।
पूर्वमेव हुतमात्मनो वपुः प्रेयसीविरहदुःसहानले ॥३॥
सर्वतो निजनिकेतशाखिनामुन्मुखैर्मुखरपक्षिणां गणैः ।
क्रन्दतीव भुवने निराश्रयं यातमस्तमयमंशुमालिना ॥४॥
भर्तरि व्युपरते महोनिधौ संनिधौ च विषमे निशागमे ।
आकुले जगति दिक्षु तत्क्षणं लग्नमायसकवाटवत् तमः ॥५॥

दूरदारिततमिस्रमिश्रितैरन्तरान्तरगतैर्मरीचिभिः ।
मित्रशोकधृतचीरचीवरो हा हतव्रतमिवेन्दुराददे ॥६॥
मन्त्रिणोऽपि दनुजस्य तत्क्षणं म्लानिमुद्वहति वक्त्रपङ्कजे ।
षट्पदस्रगिव मञ्जुरप्यलं निष्फलेति न बभौ सरस्वती ॥७॥
सोऽब्रवीत् इव नृपेन्द्र मानसे तस्करोऽयमिति मास्त्ववस्करः ।
दत्त एष दुहितुस्तवोमया माधवमसवसंभवो वरः ॥८॥
अद्य तुङ्गिमतुलाधिरूढयोरन्तरं भवतु देवदैत्ययोः ।
त्वं हि दूरविनते जनार्दने देव यास्यसि सुदूरमुन्नतिम् ॥९॥
उन्नतो रिपुरुपैति चेन्नतिं किं हतेन विधिनाप्यसौ हतः ।
तं हि सायमिव कैरवद्विषं स्वप्रमापि विनमन्तमुज्झति ॥१०॥
आशरीरमतिकष्टदायिनी नष्टशल्यसदृशी नृणां नतिः ।
संगरे तु निशितासिनिष्पतत्कण्ठतक्षणमृतस्य का व्यथा ॥११॥
विद्विषामुपनतस्य मानिनो मन्महेऽमरकमेव जीवितम् ।
आहतः पुनरसौ रणाङ्गणे स्वर्गभाग् भवति तत्क्षणं रिपुः ॥१२॥
सान्त्वनं रिपुषु चाटुकारिता भेदनं पुनरनार्जवं विदुः ।
दानमर्थहरणं दमश्रमः क्वाप्यसौ तदिह सिद्धिरुन्मुखा ॥१३॥
उत्सवोऽयमयमध्वरो महानेष कीर्तिपटहो जगत्रये ।
कृष्णनप्तरि बलेः कुलोचिता यत्र तवाद्य मधुपर्कसत्क्रिया ॥१४॥
शक्रसाधितसुधाचमत्कृतौ संस्मरामि वचसां कवेरपि ।
अस्ति सिद्धिरसुरास्ततोऽपि वः संधिरेति यदि चक्रपाणिना ॥१५॥
तच्च युक्तमिति गीर्गुरोरिति श्रीहिरण्यकशिपोरपि स्थितम् ।
भाविनस्तु विधिरप्यनीश्वरस्तेन तस्य विपरीतमागतम् ॥१६॥
अप्यपारबलसत्त्वसंपदं संदधानमनुमोदते सुहृत् ।
कीर्तिमाप्तुमपरेऽपि हेतवो वर्धते तु युधि बान्धवव्ययः ॥१७॥
एकजीवसमवारणव्ययादेकबाहुसमवीरविप्लवात् ।
क्रोधसंशमनमात्रसंमियं मन्महे ततमहार्घमाहवम् ॥१८॥
तीक्ष्णमस्त्रमहसा च रोचतां राजवृत्तमतिसिद्धये पुनः ।
साम कोमलितमेव जायते तैलधौतमिव जात्यमायुधम् ॥१९॥
सर्वसौख्यवसतेर्विधीयते स्वस्य यत्र वपुषः स्वयं व्ययः ।
वीरकण्ठरुधिरैः स्वतर्पणं कस्तमिच्छति रणं विचक्षणः ॥२०॥

आसतां सुबहवो न पञ्चषड्वित्रबन्धुवधवर्जितो जयः ।
तत् कथं समरलब्धमीश्वरैरल्लमिश्रमुपभुज्यते धनम् ॥२१॥
सायकस्फुटितमेव लोचनं दुर्भगीकरणकारणं नृणाम् ।
खड्गघातगतयापि नाशया पारदारसदृशी विडम्बना ॥२२॥
प्रक्षयोऽपि पुनरेव वृद्धये शीतलस्य हिमदीधितेरिव ।
अग्निवत् पुनरनारतं ज्वलन् भस्मराशिरभवन्न तिष्ठति ॥२३॥
ईहते बत विनृत्य खादिना वैरिवर्गविजयं रणेन यः ।
निन्दितः स खलु सर्वमन्त्रिभिस्तन्नियन्त्रयति सर्परश्मिना ॥२४॥
अन्यकारणकरोषविह्वलैरन्यदेव ननु तैर्विधीयते ।
ये द्विषां गुणगणासहिष्णवो जीवितग्रहणकाङ्क्षिणो जडाः ॥२५॥
संपदोऽपि सति सद्गुणोदये विद्विषां क इव हन्तुमीश्वरः ।
मूलमव्रणितमस्ति चेत् तरोरुल्लसन्ति पुनरेव ता लताः ॥२६॥
संवरन्तमिव तं शनैर्ग्रहं दूरतस्त्यज तदीयविग्रहम् ।
योऽपि तद्गतिविचारवित्तमो निघ्नतस्तमपि यस्य न क्षणः ॥२७॥
किं च संततमरातिमेदिनीदाहदुःसहमहापिपासया ।
प्रार्थ्यते बत चितापि सैनिकैर्यन्त्रतर्पणपयोऽप्यनन्तरम् ॥२८॥
आ प्रयाणदिवसात् क्षयं गतैरा पितामहमुपार्जितैर्धनैः ।
कर्षितोऽपि गृहमेति विग्रही लब्धखञ्जगजगाढगर्वितः ॥२९॥
आर्द्रपादपनिभस्य भूपतेर्लग्नमग्निमिव विद्धि विग्रहम् ।
मा स्म तस्य विलिखन्तु खं शिखाः किं तु मुर्मुरदशां स यास्यति ॥३०॥
स्थान एव नयवारिवर्धितो भूभृतां सुकृतकल्पपादपः ॥
आशु मुञ्चति लता इव श्रियो यासु काममफलमश्नुते नृपः ॥३१॥
आलवालपरिमेयमेदिनीभोगसौख्यमपि भूपभूरुहाम् ।
विश्वभोग्यफलभारहारिणीमुन्नतिं च विततिं च गच्छति ॥३२॥
स्थास्नुरानयति सर्वतः प्रजा[स्]ता विना तनुषु पार्श्ववर्तिषु ।
खातमण्डलितभूतलोत्थितं धूलिदुर्गमिव वर्धते नृपः ॥३३॥
यो हि वत्ससदृशेन चाटुना संप्रसादयति गा इव प्रजाः ।
सप्रमाणमतिरिक्तमागतो जायते धरणिपालपुंगवः ॥३४॥
भूमिपालधनवर्षहर्षितः स्यात् पदातिरपि लोकदुर्जयः ।
अब्धिलब्धजलपानगर्वितः प्रक्षिपन्निव पविं पयोधरः ॥३५॥

गाढदुर्नयशतेऽपि निर्मिते वाक्प्रदानलवमात्रनिर्वृतः ।
मातुरङ्कमिवशङ्कया विना को न संश्रयति सत्यवादिनम् ॥३६॥
पौरुषोद्भवमभङ्गुरं यशो यस्य संचरति दिक्षु रक्षितम् ।
दूरतोऽपि रिपुदर्पशातने तस्य नास्ति युवराजदुःस्थता ॥३७॥
यः सदाचरणमेव भेदयन्नुत्थितस्तु भुवि लोककण्टकः ।
विद्विषन् मुकुटघृष्टिनिष्ठुरं तस्य मूर्ध्नि विनिधीयतां पदम् ॥३८॥
दण्ड एव विधिवद् विधारिते योऽन्यदिच्छति परप्रसाधनम् ।
नोज्झति ध्रुवमविद्यया वृतं तं यतिं च नृपतिं च न क्षमा ॥३९॥
संविदुज्झति रुषा वशीकृतं तां विना विरचितान्धविभ्रमः ।
मुक्तमार्गविकलो विगाहते दुःसहव्यसनगर्तदुर्गतिम् ॥४०॥
उन्मिषन्त्यपि न निष्फलं बुधाः साधितोऽपि युधि सत्त्वकिंचनः ।
स्थानमात्रमपि तस्य वारिधौ याति[1] पाण्डुतनयस्तु मेदिनीम् ॥४१॥
किं च लूनशिरसोऽपि वैरिणः को नु विश्वसिति तस्य मायिनः ।
दस्यवः सततजन्मकण्टकैः काल एष सकलोऽपि दुर्गमः ॥४२॥
दानवोऽपि परिणामदारुणं किं तु युक्तिलवलिप्तमालपन् ।
प्रत्यभासत भुजंगपुंगवः क्षीरमिश्रितमिवोद्वमन् विषम् ॥४३॥
यद् यदा क्षममवैति तत् तदा तत् किमेव मतिरद्य नः सुहृत्[2] ।
प्रातरस्यति न चेत् तमोघटामाविरस्ति कथमर्ककेसरी ॥४४॥
आदिशब्दरिपुरप्रतिक्रियः कथ्यते हरिररिंदमस्त्वया ।
तत् कुतो नु खलु हन्तुमद्य मे नेन्दुशेखरसखाय दीयते ॥४५॥
मुक्तभूतगणलग्नमोष्ठयोर्यस्य धौतमसृगेव नार्णवैः ।
नूनमश्नुवति न चण्डिकापतेस्तस्य वृष्टिरुपदंशतामपि ॥४६॥
किं च सर्वकरणीयकारणं हेतुरष्टककुभां प्रसर्पणे ।
अस्ति निश्चितदिनोदयो न चेदुद्गतं किमिति मित्रमग्रतः ॥४७॥
धूलिजालमिव दिक्षु दूरतः प्रक्षिपन्नखिलवैरिमण्डलम् ।
भ्राम्यति क्षितिमनारतं न यः सोऽस्तु कस्य हृदये प्रकम्पनः ॥४८॥
नाभयाय सुहृदां न च द्विषां यो बिभर्ति हृदि शल्यतुल्यताम् ।
आहुरप्यतिविशालबाहुना तेन मातरमपुत्रिणीं जनाः ॥४९॥

---

१. 'पाति' इति वा पाठः । २. 'पश्य नः' इति पाठान्तरम् ।

एकगत्वरशरीरवासिना गोत्रलग्नमविनाशि दुर्यशः ।
का नु हानिरपनीयते यदि प्राणपङ्करुहिणीदलाम्बुना ॥५०॥
जीवितैकफलमुग्रमार्जितं लुण्टितं पुरत एव यद्यशः ।
ते शरीरकपलालपालनं कुर्वते बत कथं मनस्विनः ॥५१॥
पश्य मद्भुजसहस्रमुग्रतं पश्य कम्पितपितामहं तपः ।
स्यात् तदद्य वदतां तमव्ययं सर्ववेदवचसामसत्यता ॥५२॥
और्ववत् पितृपराभवज्वलद्दैत्यभीतिनिभृतं चरन्त्यपि ।
मन्त्रिणोऽपि त्रिपदङ्घ्रिसंनिधावाप भूपमखिलं सरस्वती ॥५३॥
आहतोऽस्मि तत्र सर्वपूर्वजैस्तन्न युक्तमवमन्तुमद्य माम् ।
वृद्धवाक्यमिति का तवारुचिः पक्वमेव भजते रसः फलम् ॥५४॥
यत् त्रिचक्षुरुत यच्चतुर्मुखं यच्च रूपमपरं चतुर्भुजम् ।
ऐक्य एव भवविष्णुवेधसां तत्तनुत्रितयकारणं शृणु ॥५५॥
सर्वदर्शनपटुस्त्रिलोचनः सर्ववाङ्मयमुखश्चतुर्मुखः ।
एक एव परमः पुमानयं सर्ववीरविजयी चतुर्भुजः ॥५६॥
मत्सरस्य च न गोचरोऽप्यसावेषयत् खलु निसर्गजो गुणः ।
प्रस्तरो यदिषुणा न भिद्यते किं स कार्मुकभृतः पराभवः ॥५७॥
साहसोद्यमतपोभिरर्जितं यत् तदेव यशसे मनस्विनाम् ।
लङ्घ्यते क्षितिरलङ्घ्यमम्बरं यत् तदत्र न यशो न दुर्यशः ॥५८॥
इत्यमात्यवचनादनन्तरं मानमेदुरमनाः स मन्दधीः ।
अब्रवीदुपकृतं खलु त्वया ख्यापितः स रिपुरीदृशो यतः ॥५९॥
तत्र गोप इति तस्य चाग्रजे सत्यमेव मम लाङ्गलीति धीः ।
तेन तत्र यदभूद् घृणामयं तत् पुनः [समर]सस्पृहं मनः ॥६०॥
मन्त्रिणोऽपि बत वीक्ष्य तस्य तं दुर्मतेर्दुरवसानमाशयम् ।
जीवितं गतमिवोज्झितायतश्वासमारुतमिषेण ततैः कृतम् ॥६१॥
तदनु च महाचिन्ताभारातिरेकतिरोहित-
स्मृतिवशविसंज्ञानात् तेन क्षणं यदलेखि भूः ।
तदसुरपतिप्रत्यासन्नप्रकृष्टपराभव-
व्यसनपिशुनज्योतिर्विद्यारहस्यमिवोद्धृतम् ॥६२॥

---

१. 'संप्रति घृणालु यन्मनस्तत्स्पृहालु समराय सांप्रतम्' इति वा पाठः ।
२. 'तत्क्षणम्' इति वा पाठः ।

सोऽवधाय दधे चान्तःस्थितोऽयं हृदयेऽपि नः ।
बिम्बितोऽपि जले भानुः सरसामिव तापनः ॥६३॥
मा स्म संधिं विजानन्तु मा स्म जानन्तु विग्रहम् ।
आख्यातं यदि शृण्वन्ति भूपास्तेनैव पण्डिताः ॥६४॥
अयं तु श्रुतशास्त्रोऽपि पूर्वपक्षरुचिर्जडः ।
पूर्वपक्षस्थितो गच्छेदमृतांशुरपि क्षयम् ॥६५॥

आप्तोऽपि दूरतरमार्द्रतरोऽपि दूरं
रक्तोऽपि काममथ च व्यथितोऽपि कामम् ।
नावेक्षितोऽप्यथ स दग्धनृपेण साधु-
रस्तोन्मुखेन खरदीधितिनेव पद्मः ॥६६॥
अत्रान्तरे मुखमृदङ्गरवेण नृत्यञ्
शौरेः पुरीमनु मुनिप्रवरः प्रतस्थे ।
नेत्रत्रयीभुजचतुष्टयविभ्रि(? भ्र)मुक्त-
संसारयोस्त्वरितमस्तु कलिः किलेति ॥६७॥

इति भट्टलक्ष्मीधरकृतौ चक्रपाणिविजये महाकाव्ये कूष्माण्डवाक्यं नाम द्वादशः सर्गः ॥१२॥

अथ त्रयोदशः सर्गः ॥

तं वीक्ष्य मुनिमाकाशे रवेरनतिदूरतः ।
सद्यो ब्रह्माण्डजातस्य सस्मार ब्रह्मणो हरिः ॥१॥
रेजुराचरणं लम्बास्तस्य हेमोज्ज्वला जटाः ।
भास्वतैवाहिताः सम्यगभिवादयितुं कराः ॥२॥
उद्धृत्य वेदसरसो मन्त्रबीजानि या कृता ।
अब्जबीजावलीत्याहुस्तस्य तां चर्मचक्षुषः ॥३॥
अविद्या नाम कौलेयी प्रवेशे परमात्मनः ।
इतीवाषाढनामानं दण्डं नोज्झति यः सदाः ॥४॥
रजस्तमश्च निर्धूय सत्त्वमेव बलीयसा ।
धौतोपवीतव्याजेन येनाङ्गे त्रिगुणीकृतम् ॥५॥

मौञ्जीतन्तुत्रयव्याजात् सदाचारानुरक्तया ।
त्रय्येव गुणरूपेण परिक्षिप्तो विभाति यः ॥६॥
आसन्नवर्तिनो यस्य पिङ्गैरङ्गोत्थरश्मिभिः ।
हेमधारामयी दृष्टिरासीदिव हरेः पुरि ॥७॥
सोऽतीत्य चन्द्रसूर्यादिग्रहनक्षत्रमण्डलम् ।
लीलयैव हरेर्धाम प्रापदप्राकृतो मुनिः ॥८॥
अभ्युत्थिते तु गोविन्दे मुनेरजनि साध्वसः ।
चलं हि चलिते तस्मिन् स योगी जगदीक्षते ॥९॥
नाजन्मब्रह्मचर्येण नाजन्मब्रह्मचिन्तया ।
तां विशुद्धिं मुनिर्मेने या दृष्टे देवकीसुते ॥१०॥
भास्वतस्तस्य देवर्षेर्मेघश्यामेन शौरिणा ।
अजायत किमाश्चर्यमजीयत यदि प्रभा ॥११॥
तौ विरेजतुरन्योन्यमादराक्षेपबन्धुरौ ।
मारुतद्वयसंघट्टकृष्टाविव महातरू ॥१२॥
तं धौताम(? न)परस्पृष्टहेमपीठोपवेशितम् ।
अनूपविष्टो भगवानर्घानन्तरमब्रवीत् ॥१३॥
आस्ते ब्रह्मस्वयंदत्तप्राजापत्यपराङ्मुखः ।
मुनिः सनन्दनो यत्र ततोऽप्युपरि ते स्थितिः ॥१४॥
तव किमर्थं न जानामि मर्त्यसंचारसंकटम् ।
इमां भूमिमनुप्राप्तो भगवानद्भुतं मम ॥१५॥
आहो यं प्रति गन्तास्मि येन दृष्टो यदध्वना ।
तानशेषान् पुनामीति यात्रेयं विश्वपावनी ॥१६॥
कृतः किं पथि देवर्षेरप्रमत्तेन वायुना ।
स्वर्गगङ्गाकणोन्मिश्रमन्दारकुसुमोत्करः ॥१७॥
एत्य च्छत्रायमाणैस्तैर्दृष्ट्वा चन्द्रायितं रविम् ।
सापराधैरिव त्यक्तं वारिवाहैः किमम्बरम् ॥१८॥
ध्रुवाद्यैः सूर्यपर्यन्तैस्त्वद्दत्तार्घजलैर्दिवि ।
तीर्थकोटिषु सृष्टासु साभ्यसूया न जाह्नवी ॥१९॥
क्षालितं चरणद्वन्द्वं प्रायो वः पथि नैतया ।
तेनाद्यापि पतत्येषा मन्ये मन्दाकिनी दिवः ॥२०॥

एतद् बिन्दून् मुनीन्द्रेषु प्रत्याश्रमजलाश्रयम् ।
क्षिपन् सुतीर्थताहेतोः कुशलं ते कमण्डलोः ॥२१॥
त्वत्स्नानाम्भःसमासन्नशिरोधारणधावितैः ।
सिद्धैस्ते व्योमगङ्गायां न व्यग्रमघमर्षणम् ॥२२॥
अभ्यागते त्वयि व्यक्तिं यास्यन्ति यदवोऽधुना ।
अपि शैलाः प्रकाशन्ते न विना भास्करोदयम् ॥२३॥
किं तु त्वद्दर्शने यावान् यदुगोत्रमहोत्सवः ।
तावानपि मनःखेदो यथोक्तकरणं विना ॥२४॥
अर्थैरुपनतिः का ते सत्यलोकनिवासिनः ।
त्वद्दुर्वाचामपि स्वर्गं स्वर्णं मृन्मणयः शिलाः ॥२५॥
साहाय्येन च किं तस्य नयस्य प्रतिपन्थिनः ।
येऽप्यन्तर्दुर्जयाः पञ्च तेऽप्यन्येषां, न ते द्विषः ॥२६॥
तथापि किंचिदेवात्र स्वीकृत्य प्रपुनीहि नः ।
गङ्गयैकाङ्गसङ्गोऽपि निर्मलीकरणं नृणाम् ॥२७॥
एवंवादिनि गोविन्दे ब्रह्मादिपितरि प्रभौ ।
अवादि नारदेनापि मन्दाक्षस्खलदक्षरम् ॥२८॥
भगवन्नेभिरत्यर्थमलं मदुपलालनैः ।
अपरीमाणमुत्क्षिप्तो भर्त्रा भवति पातितः ॥२९॥
त्वां वदन्ति हरब्रह्मपरतः परमेश्वरम् ।
न त्वीदृगिति ते रूपमपि जानन्ति योगिनः ॥३०॥
स्रष्टा च क्षयहेतुश्च यौ हंसवृषवाहनौ ।
तवैव प्रकृतेराहुस्तौ रजस्तमसी बुधाः ॥३१॥
सत्त्वं नित्यप्रकाशित्वादधिष्ठाय स्वयं भवान् ।
उदासीनवदासीनो जगच्चारमुदीक्षते ॥३२॥
दृष्ट्वा तु संस्थितेर्भेदमिच्छासाध्येऽपि वस्तुनि ।
करोष्यसुरसंहारक्रीडां भुवि गतागतैः ॥३३॥
स त्वं मत्स्यमहाकूर्मकिरिकेसरिवामनाः ।
रामाणां त्रितयं बुद्धः कल्की तैर्विविधायसे ॥३४॥
अद्य त्वादिवराहत्वं यदि मन्दायसे मनाक् ।
भ्रश्यद्भूधरबन्धाद् भूस्तद् ध्रुवं विघटिष्यते ॥३५॥

तदुत्तिष्ठ न वेद्मीति क्रीडा पीडाकरी तव ।
मायासमरबद्धस्य प्राद्युम्नेर्बलिसूनुना ॥३६॥
त्वामप्यगाधसद्भावमपारमपराजितम् ।
अपामिव पतिं पातुमीहते बाणवाडवः ॥३७॥
अथाब्धिरिव कल्पान्तकम्पितो यादवान्वयः ।
चकार कोपकल्लोलैर्जगल्लङ्घनविभ्रमम् ॥३८॥
ततस्ते तत्क्षणं सर्वे रेजुरारक्तलोचनाः ।
अन्तर्ज्वलितकोपाग्निज्वालापल्लविता इव ॥३९॥
बभूव पुलकस्तेषां वज्रकण्टकनिष्ठुरः ।
ऊर्मिस्फोटितसर्वाङ्गनिर्यद्दर्पाङ्कुरोपमः ॥४०॥
ते परस्परमर्दिष्णुभुजचूर्णितरक्षसः ।
कोपतन्मयहृद्दृष्टं पिष्टवन्त इव द्विषम् ॥४१॥
तदाहतमहीघातबद्धशोणितबिन्दवः ।
अभवन्निव शेषाहेः सर्वे द्विमणयः फणाः ॥४२॥
दूरोन्नतनमत्तीक्ष्णभ्रूलतोल्लिखिताम्बरः ।
प्रत्यभासत कुर्वाणः कुन्तचिन्तामिवापरः ॥४३॥
अङ्गभङ्गमिलद्बाहुमध्ये वक्रितकन्धरः ।
रराज कोऽपि कल्पान्ते नृत्यन्निव नटेश्वरः ॥४४॥
अपरस्तु प्रसार्यैकं बाहुमाकुञ्चितापरः ।
अङ्गभङ्गापदेशेन चिक्षेप विशिखानिव ॥४५॥
अथ दूरं मुरारातिप्रतापाग्नेरुदेष्यतः ।
ज्वाला इव मुखात् तेषामुत्तस्थुः प्रखरा गिरः ॥४६॥
कियन्मात्रं बलेः सूनुर्वक्रभ्रूलतया तव ।
तरोरिव फलं पक्वं व्योम्नः सूर्योऽपि पात्यते ॥४७॥
पशूनां च पतिस्तत् किमिदानीमेव विस्मृतः ।
यत् त्वया बालरामत्वे धनुर्भग्नमवज्ञया ॥४८॥
हृते यशसि तस्यैवं किं कृत्यमपरं त्वया ।
आकृष्टनवनीतस्य दध्नो मन्थेन किं पुनः ॥४९॥
चलस्तु यदि यात्येव तन्नो युधि मुधा श्रमः ।
भास्वद्दस्ते हि तिमिरे ज्वलन्तोऽपि किमग्नयः ॥५०॥

तदस्मद्बाणवृष्टीनां प्रशमार्थमिवोद्यताः ।
कुर्वन्तु पूतनाः शीघ्रं बाणशोणितकर्दमैः ॥५१॥
अथेत्युवाच वैरिञ्चिराम वीराः किमद्भुतम् ।
नूनमन्यादृशां वंशे जायते न जनार्दनः ॥५२॥
केवलं बत चत्वारि चत्वारिंशच्च सा पुरी ।
इतः क्रोधसहस्राणि गरुदेव यदग्रणीः ॥५३॥
स्वर्यतां स्मर्यतामद्य तदेको विनतासुतः ।
यः स्मृतेरविरामेऽपि देवमह्नाय नेष्यति ॥५४॥
जानुमण्डलनामात्रे यावान् कालः करस्य नः ।
ब्रह्माण्डमण्डलीकारे तदर्धार्धे गरुत्मतः ॥५५॥
सूचितक्रोधसंतप्तश्वासैरथ मधुव्रतैः ।
पीयमानाननो दूरादित्यूचे बलबान्धवः ॥५६॥
यदादिशति देवर्षिः कृत्यमद्य तदेव नः ।
हृतेऽपि कर्पटे कीदृग् बलाबलविचारणा ॥५७॥
इदं वा साधु नेदं वा विकल्पा ग्राम्यवस्तुषु ।
नियमेन तु कृत्यानामित्थं वा नेत्थमेव वा ॥५८।
किं तु नः मथिता मैत्री समं विषमचक्षुषा ।
तदकाण्डरणारम्भराभसिक्यमसांप्रतम् ॥५९॥
प्रद्युम्नान्तरितो दूरमनिरुद्धः परो मम ।
एकमेवानुजानन्ति मया सह महेश्वरम् ॥६०॥
यस्तु बाणापराधेऽपि न क्रुद्धः ख्यातमेव तत् ।
वशीभवति भक्तानां प्रसन्नः पार्वतीपतिः ॥६१॥
आहो कृतापराधोऽपि कोपनीयो मया न सः ।
न केवलं बलेनैव शीलेनापि जितोऽजितः ॥६२॥
तादृशां मादृशानां च प्रशान्तपदतस्थुषाम् ।
अहंकारोऽप्यहंकार(ः)प्रशान्तौ यः स शोभते ॥६३॥
तत् करोतु कुमारस्य बन्धं बान्धवमेव वा ।
तथापि न तदर्थं मे करः स्पृहति कार्मुकम् ॥६४॥

---

१. 'काम्यं' इति पाठान्तरम् ।

क्वाकारणरुषां संख्या संख्याताः कारणक्रुधः ।
कारणेऽपि न कुप्यन्ति ये ते जगति पञ्चषाः ॥६५॥
यूयमेव प्रमाणं मे ब्रूत यत् सदृशं सताम् ।
अपि कामं विपर्यस्तः सुहृदर्हति वध्यताम् ॥६६॥
नहि नाम न शक्नोति करः करविदारणम् ।
दैवादेकनखक्षुण्णस्तदन्यस्तं भिनत्तु किम् ॥६७॥
अनादिसुहृदि श्लाघ्ये कथंचिदपकारिणि ।
नेयं चेदुपपद्येत नूनं निर्विषया क्षमा ॥६८॥
अलं प्रकुप्य जायन्तां ते वीरा भीरवो वयम् ।
न खलु ब्रह्महत्यायाः पलायनमसुन्दरम् ॥६९॥
उक्तं चैतदनुल्लङ्घ्यवचसा चक्रपाणिना ।
दृढीभूतं पराभूतिशल्यं च हृदि मानिनाम् ॥७०॥
मुरारिवचनोत्तीर्णप्रक्षालनभयोल्बणः ।
बबन्ध दृढपर्यङ्कं वीरवक्त्रेषु कालिमा ॥७१॥
मानभङ्गभवद्दीर्घनिःश्वासपवनच्छलात् ।
प्राणैरिव भटेन्द्राणां संघो यानाय तानितम् ॥७२॥
ततः षोडशसाहस्रदेवीप्रलपितच्छलात् ।
आसीदिव हतो धात्रा दानवाक्षेमडिण्डिमः ॥७३॥
अथोल्लसितदन्तांशुमिश्रितैरूचिरे च ताः ।
अक्षरैः करुणावारितरंगोत्सङ्गितैरिव ॥७४॥
आः कष्टं कृष्णपाषाणविपरीतोऽसि निर्मितः ।
लग्नः शोकघनोऽस्मासु त्वं च वाग्वह्निमुज्झसि ॥७५॥
अस्मानपि परित्यज्य धावस्यनुजयश्रियम् ।
कथं बत परैर्बद्धमनिरुद्धमुपेक्षसे ॥७६॥
एह्येहि पुनरप्येषा चरिष्यति वधूतत्रम् ।
पश्य पुष्पमिव म्लानमनिरुद्धवधूमुखम् ॥७७॥
उचितैव हि ते मैत्री समशीलेन शूलिना ।
स हि ब्रह्मवधं चक्रे वत्सघाती भवानपि ॥७८॥
प्रसीदानय नः पुत्रमानीतेऽपि कृपा यदि ।
शूलपाणिसहस्राणि भूय एव विधास्यति ॥७९॥

सन्ति पुत्राश्च पौत्राश्च न तु प्राद्युम्निसंनिभः ।
त्वन्नाभिपद्मसादृश्यं कथमन्यसरोरुहाम् ॥८०॥
सन्त्यन्येऽपि महाम्भोधौ मणयः कामनिर्मलाः ।
त्वदुरस्थितियोग्यस्तु कौस्तुभादितरः कुतः ॥८१॥
मन्ये त्वं पञ्चपञ्चाशन्मध्यात् कश्चिदुपागतः ।
अद्य ते शठ काठिन्यमन्यथा कथमीदृशम् ॥८२॥
अस्राम्बु सत्यभामायाः क्षालिताधरयावकम् ।
प्रतिभाति पतद्वक्त्रात् सरक्तमिव जीवितम् ॥८३॥
रुक्मिण्यपि हि नि[ः]स्थामग्रीवाविलुलितं शिरः ।
तीक्ष्णशोकासिना च्छिन्नं धत्ते पतदिव क्षितौ ॥८४॥
आहो स्थानेऽसि विश्रब्धः श्रुत्वापीदं यदास्महे ।
म्रियन्ते वज्रपालेऽपि यास्तत्प्राणभयं कुतः ॥८५॥
मानाग्निना प्रथममेव हि मर्मरांस्ता-
नन्तःपुर(ः)प्रलयिता शमिता च पिष्टान् ।
नीत्वा द्रवत्वमथ बाष्पजलैरखादन्
सक्तूनिवाखिलयदूननिरुद्धशोकः ॥८६॥

इति भट्टलक्ष्मीधरकृतौ चक्रपाणिविजये महाकाव्ये नारदागमनं नाम त्रयोदशः सर्गः ॥१३॥

अथ चतुर्दशः सर्गः ॥

अथाब्रवीदतिक्रोधादधिक्षिप्य गदाधरम् ।
हली प्रबलसामर्थ्यमतीकृतजगत्त्रयः ॥१॥
क्व यामः शूलपाणिस्ते चक्रपाणेः सुहृद् यदि ।
मातुरप्युदरे नास्ति वत्सरादुपरि स्थितिः ॥२॥
तदु त्त्वष्ठ प्रतिष्ठस्व यत्र ते मित्रमीश्वरः ।
अलं विलम्ब्य जायेथां द्वावेकत्र जगत्पती ॥३॥

ऐरावणरदोत्तालहलोत्खातहिमाचलः ।
अयमायात एवाहमादाय यदुवाहिनीम् ॥४॥
पुरतोऽपि पुरारातेस्तमद्य बलिनन्दनम् ।
नो चेद् भिनत्ति तन्नूनं कृषीवलहलं मम ॥५॥
बाणे विशति पातालं कुद्दालं मम लाङ्गलम् ।
आरोहति वियच्चूलं तदैवाकर्षणाङ्कुशः ॥६॥
किंच प्रागपि रुद्रेण मत्सरो गुरुरस्ति मे ।
मयि लाङ्गलिनि ख्याते कथं स वृषवाहनः ॥७॥
इत्यादि वदति ज्येष्ठे कारणक्रुधि बान्धवे ।
कम्पमानमना देवः सेवापूर्वकमब्रवीत् ॥८॥
तावदार्य वयं ब्रूमो यावदाज्ञा न तावकी ।
स्मृतेरर्थः समर्थोऽपि श्रौतमेवानुवर्तते ॥९॥
तथापि मृदुसीतोक्तिपूर्वमुत्तिष्ठतां हठः ।
मुमुक्षुरशनिं शक्रः पयः प्रथममुज्झति ॥१०॥
अपि सोढमहाशैलगाढघातेन सिन्धुना ।
पुरः पीयूषमुन्मुक्तं कालकूटमनन्तरम् ॥११॥
तद् यातु विनतासूनुः स हि वक्तुमुदारधीः ।
कोमलं च कठोरं च काले कविरिव क्षमः ॥१२॥
इत्युक्ते सोदरप्रीत्या मेने मानवतां वरः ।
स्मृतायातनताश्लिष्टमवदच्च फणिद्विषम् ॥१३॥
यूयं वीरव्रताचारगुरवः प्रथमे नताः ।
तथापि तार्क्ष्य दुर्वारा वाचालयति मां रुचिः ॥१४॥
प्राञ्जले प्राञ्जलं वाच्यं वक्रे वक्रं समे समम् ।
अतिक्षमित्वमप्याहुस्तादृशेष्वसमर्थताम् ॥१५॥
सुपर्णस्तु तदाकर्ण्य प्रतस्थे चाससाद च ।
अविशच्च सभां शम्भोः सादरद्वा[ः]स्थसूचितः ॥१६॥
प्रणामानन्तरं चैनमासन्नासनवर्तिनम् ।
सस्मितालब्धविश्रान्तमित्याह परमेश्वरः ॥१७॥
ब्रूहि तार्क्ष्य यदाख्याय प्रेषितोऽसि मुरारिणा ।
न हि स्मरति तत्रस्थः कृत्याभावे हरिस्तव ॥१८॥

ताक्ष्यस्तु विनयेनापि नतमौलिरुवाच यत् ।
नत्वेवोन्नमयन् भर्तुः कार्यभारं[1] बभूव तत् ॥१९॥
न ते पुरः स्फुरत्येषा सर्वज्ञ मम भारती ।
प्रकटाखिलविश्वस्य दीपिकेव विवस्वतः ॥२०॥
मुरारिकरणीयं तु विशेषविदितं तव ।
सर्वारम्भोदयक्षेत्रमेकं हि युवयोर्मनः ॥२१॥
अपूर्वदर्पणाकारमाहो वां हृदयद्वयम् ।
यद्गृहीतानि बिम्बन्ते दूरादपि परस्परम् ॥२२॥
संदेशैस्तस्य ते प्रश्नैः सोऽयमज्ञानलङ्गिमा ।
यद् यस्यास्ति न तत् तस्य यन्नास्ति तदतिप्रियम् ॥२३॥
निष्प्रपञ्चतया मन्ये युवयोश्चिरखिन्नयोः ।
क्रीडतोर्विविधाकारं प्रकारः सोऽप्यसावपि ॥२४॥
इयांस्तु व्यतिरेको वामप्रमेयचरित्रयोः ।
प्रदर्शयति यत् कामं क्रीडापि परमार्थताम् ॥२५॥
किं च प्रस्तुतसंसारनाट्यनिर्वहणैषिणौ ।
नटाम्बिकापि युक्तैव क्वापि तत्सूत्रधारयोः ॥२६॥
सोऽहं किल हरेर्दूतः कार्येणास्मि किलागतः ।
त्वमुक्तं किल जानासि तद् विज्ञापयतः शृणु ॥२७॥
वत्सरास्तेऽस्मदादीनां क्षणार्धादर्धमेव ते ।
यदासीद् भारखिन्नायाः स्वर्गे पूत्करणं भुवः ॥२८॥
ततस्त्वममरग्रामसमेतः क्षीरसागरात् ।
प्रतिबोधितवान् देवं दुष्टासुरविमर्दने ॥२९॥
तदग्रणीर्बलेः सूनुरक्रमेण क्रमेण च ॥
अधुनैव जगद्गृध्नुः कालक्रुद्धो भवानिव ॥३०॥
एकतस्तन्महाभारादुत्तारितभराऽन्यतः ।
कथं न बत गन्त्रीव प्रसन्नतामेष्यति क्ष(? क्षि)तिः ॥३१॥

शान्तं पापं स यत् क्लीबस्त्वन्मित्रमिति गीयते ।
एनं तस्य त्वयि द्रोहं कथं विषहतां हरिः ॥३२॥

---

१. 'भारमभावि' इति वा पाठः ।

विश्वभर्तुः स ते साम्यमिच्छन्नेव न किं हतः ।
उत्प्लुत्य मेरुमातार्थी पातादन्यत् किमश्नुणः ॥३३॥
जगद्दीपेन तादात्म्यं स्निग्धेनापि सह त्वया ।
स्वयमेव स कुर्वाणो बाणः कीटदशां गतः ॥३४॥
प्रसरन्तु दुरालापपापानि मम सांप्रतम् ।
ज्वलन्ति हि कुलीनानां भर्तुर्दुश्चेष्टितैर्गिरः ॥३५॥
अप्यत्रभवती दूरं वराहोन्नमिता मही ।
आलोकयं समस्तानां तले यदि न देहिनाम् ॥३६॥
अपि दूरतरोदस्तं मस्तकेऽपि निवेशितम् ।
अपि वन्द्यतरं वारि पादान्तपतनोन्मुखम् ॥३७॥
त्वद्तुल्येन तु दैत्येन रेणुनेवात्यणीयसा ।
कृत्वा मूर्ध्नि पदं यस्य कस्य न म्लापितं मुखम् ॥३८॥[1]
ददानं चाददानं च भृत्यभावाधिकं पदम् ।
नाद्रियन्ते हि भर्तारं भृत्यं च नयशालिनः ॥३९॥
शङ्के त्वद्रक्षदेवेन्द्रसद्यःसंहरणोद्यतः ।
तवापि वध्य एवासौ किं तु वाचासि यन्त्रितः ॥४०॥
अनियन्त्रितमन्यत् ते वपुरास्ते गदाधरम् ।
तदस्य कुरुतां सर्वगर्वप्रशममाहवे ॥४१॥
देवोऽप्यवोचदागामिरणोत्कर्षादुदेष्यतः ।
दर्शयन्नट्टहासस्य बालाङ्कुरमिव स्मितम् ॥४२॥
मृदूकृत्य हरेः क्रूरमाशयं वदता त्वया ।
शिशिरीकृतसूर्यांशोश्चन्द्रस्य सदृशायितम् ॥४३॥
अन्तः सरसमप्युक्तं नालिकेरं खरं बहिः ।
उत्थापयति पाषाणमादाय सकलं जनम् ॥४४॥
दधत्काठिन्यमप्यन्तर्भूयिष्ठरसवद् बहिः ।
इदं तु स्पृहणीयं ते पक्काम्रसदृशं वचः ॥४५॥

---

१. अष्टत्रिंशश्लोकानन्तरं प्रान्ते प्रक्षिप्तोऽयमधिकः श्लोकः प्राप्यते–
"नातिनीचैर्न चात्युच्चैर्भवितव्यं फलार्थिना ।
स्तोकं नत्वा पिबन्नम्भः कुम्भः प्राप्नोति पूर्णताम् ॥३९॥"

हरेरेव यशः किं तु स्यादित्थमयशस्तु नः ।
अनाचारविभक्तानामभेदः किंनिबन्धनः ॥४६॥
दोषोऽस्ति यदि बाणस्य बाणस्यैव स नः पुनः ।
आश्रितं त्रायमाणानामपि दुष्टं न दूषणम् ॥४७॥
अस्मदौचित्यमेवेत्थमनारम्भोत्तरं हरेः ।
मयि बाणशुचि ब्रूत वैनतेय यदुत्तरम् ॥४८॥
विभोर्वचनपर्यन्ते विनीतो विनतासुतः ।
गुरोरिव पुरः शिष्यो विरेजे विवदन्नपि ॥४९॥
को नाम कृतिनामाद्य त्वदुक्तादुपरि क्षमः ।
विधेरतीन्द्रियस्रष्टुः किमाशा प्रतिपन्थिनी ॥५०॥
किं तु जात्युत्तरमिदं सुहृद्दूतेन वः क्षमम् ।
नैन्द्रजालिकमाकन्दफलैः पात्रं प्रतार्यते ॥५१॥
स्वस्मादनपरः कस्मादाश्रितोऽप्येष कथ्यते ।
स ते बाहुरिवाख्यातः किंतु वामो न दक्षिणः ॥५२॥
प्रेमाकृष्टस्य चेष्टन्ते यथेष्टं राजवल्लभाः ।
प्रकाशेऽपि परं दुर्गपल्ली भवति तत्पुरी ॥५३॥
शनैरनीतिराप्तानां भर्तारमपि पातयेत् ।
शाखासु पतिता लाक्षा प्रवृद्धमिव पादपम् ॥५४॥
अथासौ देवदेवेन तिर्यगुत्तानिते करे ।
स्थितः शान्तोक्तिकल्लोलं रामेणेव महार्णवः ॥५५॥
उत्क्षिप्ता च तमुद्दिश्य भ्रूलता प्रति नन्दिनम् ।
अन्तर्ज्वलितकोपाग्निर्धूमलेखेव शम्भुना ॥५६॥
अथेदमवदन्नन्दी तं दीप्त इव पावकः ।
तदङ्गघट्टमानोग्रज्वालाखण्डखरं वचः ॥५७॥
स्वादु वाक्यमिदं किंतु मध्यमस्याविचारयन् ।
मत्स्याद इव भिद्येत त्वद्दुराशयकण्टकैः ॥५८॥
अन्तर्विषमयं तार्क्ष्य बहिः सरलकोमलम् ।
शोभन्ते भवतामेतदाहारसदृशं वचः ॥५९॥

---

१. 'नाथ' इति वा पाठः ।

त्वयैतानि प्रयुक्तानि पदान्यग्रमपश्यता ।
विना बत विलम्बेन वैनतेय पतिष्यसि ॥६०॥
कियानपि यदीशस्य कृत्याकृत्यानि भाषसे ।
खेचरन्तमथात्मानमुदग्रं खग मन्यसे ॥६१॥
सदित्येष करोतीति यस्य धीरन्ध एव सः ।
एतदाचरितं श्रेयो यः पश्यति स पश्यति ॥६२॥
करे कपालमेतेन यदात्तं चातुराननम् ।
चतुर्वर्गफलः सोऽयं महाव्रतमहातरुः ॥६३॥
द्वित्राक्षरैव जातस्य या गोष्ठी परमेष्ठिना ।
तया त्रयीति जाग्रत्यां लोको निष्पापतस्करः ॥६४॥
सृजन्नपि महामात्यः संहरन्नपि शंकरः ।
शूलव्यालधरोऽप्येष प्रशान्तः परमेश्वरः ॥६५॥
एष रक्षति भूतानि यानि तान्येव खादति ।
अनुमन्ता निषेद्धा च नास्त्येव वृषगामिनः ॥६६॥
सोऽपि स्वरूपमेतस्य विचारयति नाच्युतः ।
न चाम्भोजभवस्तौ हि सुदूरमपराधितः ॥६७॥
आसीत् कदाचिदिच्छापि पृच्छामः किल केशवम् ।
स तु नातितरां वेत्ति जिज्ञासे जीर्यतो हृदि ॥६८॥
यदभ्यर्थयते वाणममुना परिरक्षितम् ।
द्रष्टुमेव न मैनाकमम्भोधौ लभते वृषा ॥६९॥
अलं तदभियोगेन यस्यायं धृतिरीश्वरः ।
स लोहमेव हेमाद्रिः शीतशैलो यदन्तरे ॥७०॥
इह व्योमदुरारोहे स्थितो रविरिवासुरः ।
जगतामपि दुष्प्रेक्ष्यः कियन्मात्रं गदाधरः ॥७१॥
रोपस्पृशि विरूपाक्षे चित्रमद्यापि तिष्ठसि ।
नोग्रचण्डकरे काले[1] ध्वान्तमर्हति धीरताम् ॥७२॥
एतदुक्त्वा स्थिते तस्मिन् रेजे वाणी गरुत्मतः ।
झञ्झामरुति विश्रान्ते निर्झरस्येव झात्कृतिः ॥७३॥

१. 'कालः' इति पाठान्तरम् ।

वन्द्या ते भर्तृचारित्रस्पर्शपूता सरस्वती ।
हरिनाभिसरोजन्मभ्रान्तभ्रान्तेव षट्पदी ॥७४॥
भेदं तु वदसि भ्रान्त्या वेधसामेकचेतसाम् ।
मार्गा एव त्रयो गाङ्गास्तदम्भस्तु न भिद्यते ॥७५॥
हन्त चिन्तय देवस्य यदि घात्यो न दानवः ।
रक्षापक्षे त्यजत्येनमवध्यो ह्येतदर्पितः ॥७६॥
सोदरोऽर्थः पदार्थानां परिग्रहणहानयोः ।
गुणदूषणसंबन्धो न तु स्वपरहेतुता ॥७७॥
स्वयंकृतमपि ब्रह्मा लोकसंतापकारकम् ।
आसूत्रितगुहोत्पत्तिरवधीत् किं न तारकम् ॥७८॥
तदर्पयतु तं देवः सुखसैन्यं[1] शचीपतिः ।
महाभारनिरुच्छ्वासा चिरादुच्छ्वासतु क्ष(? क्षि)तिः ॥७९॥
न किंचिन्मन्यमानस्य पदार्थमथ नन्दिनः ।
स द्विजो दूषयामास वाक्यं शाक्यगुरोरिव ॥८०॥
ग्राह्यमादातुकामस्य कथंकथ्या हरेर्धृतिः ।
हृती(? ची)नां खलु सर्वासामर्वाक्परतरश्च यः ॥८१॥
दुरारोहं तु देवस्य वक्तुमेव न ते क्षमम् ।
यत्पादात् पततां वारामग्रयानं सुरापगा ॥८२॥
किं गदाधर इत्युक्ते फलं तु ज्ञाप्यसे कथम् ।
दौत्याद(? न्न) हन्ति वक्तव्यं न कर्तव्यं क्षमोऽपि सन् ॥८३॥
तदेत्य रवितीव्राणां हिमशीतः पुरोऽपि वः ।
म्लापयिष्यति बाणस्त्रीमुखाब्जानि स्वयं हरिः ॥८४॥
सन्तु तेजस्विनः सर्वे भवन्तो वह्निसंनिभाः ।
मेघश्यामस्य देवस्य शरासारस्तु दुःसहः ॥८५॥
अथ देवः स्वयं शम्भुः कोपानिलधुतोऽप्यलम् ।
मुमोच सुरशाखीव गिरः कुसुमकोमलाः ॥८६॥
दृष्टपूर्वोऽसि दूतोऽसि किमन्यदभिधीयसे ।
गम्यतां तार्क्ष्य संक्षेपादुच्यतां च जनार्दनः ॥८७॥

---

१. 'सुखं शेतां' इत्यपि पाठः ।

इच्छारणरसप्राप्तिदु[ः]स्थयोर्नित्यमेतयोः ।
अस्ति मे द्रष्टुमुत्कण्ठा सारं शार्ङ्गपिनाकयोः ॥८८॥

स च पक्षानिलोद्धूतधौततत्तोरणध्वजः ।
पलायमानभोगीन्द्रमार्गेणेव व्रजन् बभौ ॥८९॥

अथावेदितवृत्तान्तः पुनरेव हरोन्मुखम् ।
सद्यः संवाहयामास वल्कैशवतत्सुतान् ॥९०॥

उड्डीनं वैनतेयेन क्षाराब्धेरुत्तरंगतः ।
क्षणाच्च कैटभारातिः शीताद्रेरुत्तरं गतः ॥९१॥

तरवः शैलचूलासु धाविते विनतासुते ।
प्रचण्डपवनोड्डीनाः पुनर्दृष्टा न तासु ते ॥९२॥

अवोचदच्युतस्तार्क्ष्यमतिमात्रं हि मा चलः ।
त्वत्पक्षपवनैर्दैवादुत्खातो न हिमाचलः ॥९३॥

लङ्घिता बहवः शैलास्तेन यावानुमापिता ।
प्राप्ता दिविसदां भूमिरियतैवाऽनुमापिता ॥९४॥

पप्रच्छ लाङ्गली देवमाविर्भूतातिकौतुकः ।
भवानेव क्षमो वक्तुमन्यो जानाति कौ तु कः ॥९५॥

वितनोति वियत्येष कान्तिं कांचन कोमलः ।
वर्तते न समासन्नो गिरिः काञ्चनकोऽमलः ॥९६॥

सोऽब्रवीत् कथ्यमेवारिमार्थिता त्रासदा न वः ।
पुरीयमग्निसंवीतप्रान्ता यत्र स दानवः ॥९७॥

चिन्तितश्च मयोपायः सम्यगाम्नातवेद सः ।
येनास्य प्रशमः सद्यो जायते जातवेदसः ॥९८॥

इत्युक्त्वा तार्क्ष्यमप्याह व्योमगङ्गानुवर्तने ।
आनीयैनां क्षिपन् क्षिप्रमत्र क्षेत्रनिवर्तने ॥९९॥

अथ व्यावर्तयामास व्योमगङ्गावनं विना ।
कृत्स्नं च तारकाचक्रं व्यूढमालम्बनं विना ॥१००॥

अनन्तवयसा ते न जन्मनेऽपि विवस्वता ।
अनन्तवयसा तेन ये सद्यो लङ्घिता नगाः ॥१०१॥

अहरदनुभवन्तं सोऽथ संहारकाल-
क्षुभितजलधिलीलां गाङ्गमम्भःप्रवाहम् ।
अहरदनुभवं तं मेनिरे चायतिज्ञाः
शिखिशमननिभेन प्रक्रमं सिद्धवृद्धाः ॥१०२॥
स्थिरमटदिव दुःखं वारितो वीरराज-
स्मितकलमिति भर्त्रा वारितो वी रराज ।
मुदितमथ च तेन स्वर्णदीप्रेक्षणेन
ग्रहकुसुमितवीचिस्वर्णदीप्रेक्षणेन ॥१०३॥

प्रलयसमयकुद्धेशानप्रदत्तपदाहति-
द्रुतविघटितब्रह्माण्डी यद् द्विकर्परदुर्भरे ।
सपदि कमलाभर्तुर्भृत्यः पतत्रपुटाञ्जलौ
त्रिदशतटिनीमध्यश्रान्तः प्रपातुमिवाददे ॥१०४॥

इति भट्टलक्ष्मीधरकृतौ चक्रपाणिविजये महाकाव्ये दूतसंप्रेषणं नाम चतुर्दशः सर्गः ॥१४॥

अथ पञ्चदशः सर्गः ॥

आप्लाव्य भूमिमहिलोकमनूद्यतानामावासवज्जलधिरेष पदग्रगाणाम् ।
आनीय नाकतटिनीसलिलानि तानि चिक्षेप दैत्यदहनोपरि पक्षिराजः ॥१॥
मन्दाकिनीवनतरंगपरंपराभिरापीयमानहुतभुक्प्रमलिनायमानैः ।
अङ्गारसंततिशतैः परितस्तरङ्गिजातं स्मशानमिव तन्नगरं सुरारेः ॥२॥
धिग् जाह्नवीं ध्रुवमसावथ वा सपत्नीतोयप्लुते त्रिभुवनेऽपि यया न चक्रे ।
प्रक्षाल्य भस्म भवकाय निरन्तरायं संस्पर्शसौख्यरसत्रिक्षणमप्यवर्णा ॥३॥
अत्रान्तरे जरठजीर्णतुरंगप्रेव संवद्धवाजिशतजातजवैरिवाङ्गैः ।
देवोऽङ्गिराः सकलगोत्रवधप्रकोपधूमायमानवदनः कदनाग्रमागात् ॥४॥
रेजे प्रभातदिनकृत्करकान्तिचौरशैलाप्लुतेन कवचेन कृशानुराजः ।
विश्वप्रवृत्तमखसंततहन्यमानसंख्यातिरिक्तपशुरक्तभरैरिवाक्तः ॥५॥

---

१. 'वीरवाजि' इति त्वादर्शलिखितः पाठः ।

अग्रे च तस्य विहितत्वरमेत्य तैस्तैर्वंज्रानलप्रलयपावकवाडवाद्यैः ।
शाखाप्रतानविततेन शिखोच्चयेन चक्रे बृहत्कनकतालमयीव धात्री ॥६॥
तस्यातसीकुसुमकाननकोमलांशुश्यामायमानदिवसाहतभानुभासः ।
अग्रे पुनस्त्रिजगदेकगुरोर्मुरारेः पूजाप्रदीपपटलायितमग्निसैन्यैः ॥७॥
गत्वा सदर्पमपि तैः पतगाधिराजपिञ्छच्छदान्तमथ तद्रसपिण्डिताङ्गैः ।
भेजे गजार्पितहिरण्मयकङ्कराग्रग्यालम्बमानमणिगोलकदानसाम्यम् ॥८॥
स्थित्वा क्षणं निभृतमित्थमथावलोक्य च्छन्नं घनैस्तृणवनैरिव तं पतत्रैः ।
उत्थाय साद्भुतभडत्कृतिभिन्नकर्णैर्ग्रासीकृतं जगदिव ज्वलनैर्ज्वलद्भिः ॥९॥
अन्योन्यपक्षपुटघट्टनतः कृतास्तु कद्रूप्रसूतिरिपुणा परमाणवस्ते ।
भूयः पिनष्टि न नतानपि किं तु कर्ता देवः स यज्ञपुरुषः पुनरेव तैस्तान् ॥१०॥
ध्वस्तेषु तेषु समराजिरदुर्जयेषु प्राप्तो महारथसहस्रसखः शिखीन्द्रः ।
कुर्वन् दिशः परिघमुद्गरशक्तिशूलनालीकपट्टिसभुशुण्डिशरान्धकाराः ॥११॥
तत्कालकोपवशविस्फुरितासरालज्वालावलीजटिलमूर्त्तिरथानलेन्द्रः ।
जातो जगत्त्रितयचर्वणवेगनिर्यद्श्रच्छटादुरितभैरवभीमरूपः ॥१२॥
अप्रेक्ष्य शार्ङ्गशरवृष्टिपरिप्रमाणमूचे वचः परुषमित्यनलाधिराजः ।
ग्रन्थिस्फुटत्कठिनकीचकदुःश्रवस्य प्रख्यापयन्निव सहोदरतां दवाग्नेः ॥१३॥
वेदोदिते त्वयि पुरा पुरुषप्रधाने प्राप्तेऽद्य धूर्जटिजयस्पृहया पशुत्वम् ।
भुक्ते च वह्निभिरहो रणदीक्षितस्य पुंमेधसिद्धिरतुला भुवि मे भवित्री ॥१४॥
इत्याननादतनुधूमसटानुसारनिष्क्रान्तसंततशिखावलयः स जल्पन् ।
रेजे दुरुक्तिकुपिताच्युतबाहुदण्डव्याकृष्टजिह्व इव वह्निमहाधिराजः ॥१५॥
इत्यालपन्नपि विमुक्तबृहत्त्रिशूलज्वालाकलापकवलीकृतभूर्भुवःस्वः ।
जग्राह साहसधनो धनुरप्रमेयसंधानमुक्तिजवनिर्जितजामदग्न्यः ॥१६॥
देवस्तु दैत्यदमनस्तमवज्ञयैव सीरध्वजेन हसता सह संविहस्य ।
मर्मच्छिदा प्रथममेनमनुत्तरेण पश्चाज्जघान हृदि मानिनमाशुगेन ॥१७॥
सद्योऽथ तं सदहनोऽपि दहत्स्वरूपः कालो ममायमिति देवमवेत्य दध्यौ ।
एष ध्रुवं प्रलयदग्धसहस्ररश्मेरेकोदरः कुपितभैरवनेत्रवह्नेः ॥१८॥
इत्थं जगत्त्रितयनिर्दहनक्षमोऽपि देवस्य कंसदमनस्य महो महात्यां ।
अर्चिष्मतां पतिरपि प्रपलाय्य मज्जंस्तामप्यकीर्तिमिति वैतरणीं न मेने ॥१९॥

१. 'वा' इति पाठान्तरम् ।

शेषं च वह्निबलमुल्बणवैनतेयपक्षानिलैर्दशदिशामतिथीकृतं यत् ।
तत्कालकोपकटुहस्तहरिप्रहारदूरीकृतस्य तदजायत जीवितव्यम् ॥२०॥
सौपर्णपक्षपवनोर्मिरयापनीतप्राकारपुष्पवनशाखिनि [१]योजिताग्रे ।
रेजे स्थितेन हरिणा सममारचय्य क्षेत्रं विशालमिव शंकरसंगराय ॥२१॥
तत्कालकायन[२]लिनीकृतचन्द्रसूर्यौ देवौ सितासितरुची बलपद्मनाभौ ।
दृष्ट्वा जनो न हि न विस्मयमाप लोकालोकक्षमाधरतटाविव भिन्नसंधी ॥२२॥
को विस्मयः समरसीमनि सोऽष्टबाहुरासीत् तदा यदि सहस्रशिराश्च देवः ।
आत्मा हि सोऽस्य जगतः सचराचरस्य को वेत्ति तत्कतिशिराः कतिबाहुदण्डः ॥२३॥
चक्रे हरिप्रथमजोऽपि वपुःसहस्रं सद्यः स येन विहनिष्यति बाणसैन्यम् ।
वीचीसहस्रपतितप्रतिमापरीतः क्षीराम्बुराशिमिव मन्थमहाचलेन्द्रः ॥२४॥
देवो बभार वसुदेवसुतात्मजोऽपि सानत्कुमारमनुकारमसह्यतेजाः ।
नान्येषु तस्य गणना स दिदृक्षुरासीत् त्र्यक्षं सहस्रभुजषड्वदनौ च वीरः ॥२५॥
रेजे हरिः सपदि दक्षिणदेहभागे कौमोदकीशरसुदर्शनखड्गहस्तः ।
रेजे च तत्क्षणमदक्षिणबाहुदण्डैरादाय शार्ङ्गविशिखासनवर्मशङ्खान् ॥२६॥
प्रक्षिप्य कोपदहने दहनेन्धनानि होतुं महापशुमिवाथ दनोस्तनूजम् ।
देवेन तत्क्षणरणव्रतदीक्षितेन व्यापारितः प्रणवकर्मणि पाञ्चजन्यः ॥२७॥
आकर्ण्य तं दनुकुलक्रमकर्णशूलं माहेश्वरोऽपि रणदुन्दुभिरुच्चनाद ।
तत्कालदत्तदृढपाणिभिरेव कर्णैराकर्णितः कथमपि स्फुटमस्फुटद्भिः ॥२८॥
रुद्रावदारितपितामहकण्ठनाडी गाढीकृता परतदस्थिनिपातचण्डैः ।
चक्रे रवैः सपदि डामरवैर्महीयानुड्डामरः प्रलयकालकृते च चण्ड्या ॥२९॥
यास्तारकस्य परिपृष्ठत्रहत्कृतान्तहक्का इवामरणमस्थितये बभूवुः ।
ताः पर्वतानिव रवैरवदारयन्त्यः सद्यो हताः कुपितरुद्रकुमारभेर्यः ॥३०॥
दैर्घ्येण तेन रणसूत्रतया तया च शङ्खध्वनिस्तु दितिजस्य तदङ्गनाभिः ।
आलोक्य देवमसुरद्विषमग्रत[ः]स्थं वैधव्यलम्बगलतन्तुरिति व्यभावि ॥३१॥
न्यञ्चद्धरादलितशेषशिरोवशिष्टमाणिक्यमज्जनमडल्कृतकूर्मपृष्ठः ।
प्राप्तो रथः पशुपतेरथ मन्दिराग्रमत्युग्रकेसरिकिशोरसहस्रयुक्तः ॥३२॥
यत्तेजसस्त्रिभुवनप्रलयप्रचण्डचण्डांशुमण्डलसहस्रमपि स्फुलिङ्गः ।
ग्रासश्च यस्य जगती स रथाधिरूढः सोढारमच्युतममन्यत नात्मशक्तेः ॥३३॥

१. 'शोणिताग्रे' इति वा पाठः । २. "°तलिनी" इत्यपि पाठः ।

क्रुद्धस्तदा त्रिशिखशूलधरः स देवः कस्याजनि त्रिभुवनेऽपि न दुर्निरीक्षः ।
अप्रक्रमेऽपि महतः प्रलयानलस्य ज्वालात्रयं दधदिव प्रथमप्ररोहः ॥३४॥

अथ विदधतुरग्रे वल्गितं यत्पुरारे-
रसमसमरमल्लौ माल्यवत्पुष्पदन्तौ ।
गगनमिव विदद्रे तैः करास्फोटनादै-
रवनिरिव चकम्पे तैः पदानां च घातैः ॥३५॥

विधिरुचिरमवाप्तं स्वेच्छया ते प्रसादात्
तदसुररिपुरक्तं पातुमीहामहेऽद्य ।
अचलदथ पिशाचैरित्थमभ्यर्थ्यमानः
सुभटमहिमलुण्टालम्पटः शूलपाणिः ॥३६॥

इति भट्टलक्ष्मीधरकृतौ चक्रपाणिविजये महाकाव्ये अग्निगुख्यवर्णनं नाम पञ्चदशः सर्गः ॥१५॥

अथ षोडशः सर्गः ॥

ततः स्थाणौ च बाणे च मुरारिसमरोद्यते ।
प्रमथासुरवीराणामासीत् स्पर्धेव धावताम् ॥१॥
अराजत बलं तेषां सितासितगरीयसाम् ।
शरदभ्रमिवाब्दानामपूर्वमिव संगतम् ॥२॥
अथोल्बणरणातोद्यनादमेदुरिताम्बरः ।
दिगन्तव्यापिभिः सैन्यैः प्राप्तः पर्वतजासुतः ॥३॥
औत्पत्तिकजयोऽप्यन्तरुद्यत्कलमलाकुलम् ।
थूत्कृत्य ध्यातकल्याणमुमया मूर्ध्नि चुम्बितः ॥४॥
चचाल बालिशो जेतुं जनार्दनमसाविति ।
वामेन स्पन्दनव्याजान्निजाक्ष्णापि कटाक्षितः ॥५॥
इत्यशाकुनशङ्कोत्थस्थूलनिःश्वासरंहसा ।
व्यावृत्तिमिव कुर्वाणः प्रतीपस्य नभस्वतः ॥६॥
स रोषज्वलितो रेजे प्राप्य संरब्धमीश्वरम् ।
निदाघसमये क्रुद्धं दावाग्निरिव भास्करम् ॥७॥

अथाशेषद्विषल्लक्ष्मीहठाह्वाननिनादिभिः ।
सूचितस्तूर्यनिर्घोषैराजगाम दितेः सुतः ॥८॥
यदुत्पतनवातोर्मिपर्यन्तस्थितयो नगाः ।
नखानुल्लेखकल्याणमाशंसति यतः क्षितिः ॥९॥
यस्य सप्तापि कम्पन्ते यियासोर्जलराशयः ।
नृत्यतो बर्हविस्तारसंकीर्णं यस्य चाम्बरम् ॥१०॥
चञ्चुत्रस्तनिशानाथं चूलाचलितभास्करम् ।
तेनाजिशतनिर्व्यूढमारूढः स्कन्दकेकिनम् ॥११॥
भुजदण्डसहस्रेण नभस्तलविसारिणा ।
आनिनीषत शौरिश्रीमण्डलं रचयन्निव ॥१२॥
स बभौ वल्गितानेकप्रकारप्रचुरायुधः ।
एक एव बलेः सूनु(? नू) रम्येवारचना दिवि ॥१३॥
ततो ये दिवि ये दिक्षु ये च पातालगोचराः ।
तदन्तरेषु ये चान्ये रुद्राः समघटन्त ते ॥१४॥
सर्वाङ्गोरगरत्नांशुव्याजेन विजयैषिणः ।
वितरन्त इव श्वासैरष्टदिग्देवतावलिम् ॥१५॥
क्रमस्थूलाननज्वालागर्भफेत्कारदारुणाः ।
अथाधावंस्तथा देव्यो यथा फूत्कृतकाहलाः ॥१६॥
व्यादाय वदनं तस्थौ हरिः क्षेमंकरी पुनः ।
आसीद् यस्याः पताकेव जिह्वा रविरथोपरि ॥१७॥
मरालधवलैः काली कपालाभरणैर्बभौ ।
स्वर्धुनीस्पर्धया व्योम्नि धावन्तीव रवेः सुता ॥१८॥
शवप्रवेशम[ा]ङ्गल्यमालेवास्थिलतामयी ।
यदाननयमागारद्वारि दीर्घा रदावली ॥१९॥
ब्रह्माण्डमण्डपक्रोडशातदन्ताथ कोटवी ।
ववल्ग व्यात्तवक्त्रान्तःकथीभूतदिवाकरा ॥२०॥
महाशार्दूलमारुह्य प्राप्ता कात्यायनी युधि ।
संध्याजलधरादूर्ध्वं स्फुरन्तीवाचिरद्युतिः ॥२१॥
अथाशेषद्विपत्कट्वी वल्लीव व्याप तत्क्षणम् ।
अतिदीर्घस्तनालाबुश्चण्डी गगनमण्डपम् ॥२२॥

अदृष्टतालिनि क्वापि विद्रुत्य वदने गता ।
प्रसरन्ती न तज्जिह्वा कस्मादिति वितर्किता ॥२३॥
ततः प्रमथदैतेययोगिनीयक्षरक्षसाम् ।
एकैकस्थानदानेऽपि पर्याप्तं न नभो न भूः ॥२४॥
किंच कृष्णरणारम्भे पञ्चानामपि तत्क्षणम् ।
व्यक्तीभूतेव भूतानां संरब्धहरमूर्तिता ॥२५॥
ददृशे खलु सर्वत्र वल्गत्खड्गनिभान्नभः ।
दधज्जिह्वासहस्राणि ग्रासीकर्तुमिव द्विषः ॥२६॥
अनेकवीरभाराढ्यरथचक्रविदारिता ।
द्विषत्कवलकामाय मुखं व्यात्तवतीव भूः ॥२७॥
गलद्गजमदासारच्छद्मना सलिलैरपि ।
प्लावनाय विपक्षाणां प्लवा इव विनिर्मिताः ॥२८॥
धारासङ्गे स्फुलिङ्गानामुत्पत्त्येव निवेदितः ।
पावकोऽपि कृपाणेषु द्विषं दग्धुमिव स्थितः ॥२९॥
धुतकेतुभुजादण्डाः पताकाताण्डवच्छलात् ।
खड्गानिव व्यराजन्त वल्गयन्तः समीरणाः ॥३०॥
अथोत्तस्थौ प्रमाथानामायतीभवतां रणे ।
बध्यमानजटाजूटभस्मद्विगुणितं रजः ॥३१॥
यदास्फालितमत्तेभकुम्भसिन्दूररेणुभिः ।
स मुर्मुरहरक्रोधहुतभुक्पुञ्जवद् बभौ ॥३२॥
रजांसि प्रविशन्तीति दृशो यैर्विनिमीलिताः ।
तैः पुनस्तद्भरेणैव पक्ष्मोत्क्षेपो न पारितः ॥३३॥
तेषामजनि रेणूनां कियद्दूरे दिवाकरः ।
असूर्यंस्पृष्टमाकाशमपि ये विजगाहिरे ॥३४॥
काञ्चनाचलमादातुं बलिना बलिसूनुना ।
प्रतिदुर्गमिवात्युच्चमरच्यत रजोमयम् ॥३५॥
विधिद्वितयसंग्रामे दृष्टिक्षिपितलक्ष्यैः ।
पुर एव रजोव्याजात् पृथग्भूतमिवाणुभिः ॥३६॥
महासुरचमूभारभीता भूयोऽपि भूरिव ।
रजःसंघापदेशेन प्रपलाय्य दिवं गता ॥३७॥

अदर्शनादसंचारादनाकारविकल्पनात् ।
वयमन्ये रजःपुञ्जादिति वाचा विवेचितम् ॥३८॥
अथ पञ्चमहाभूतपरिभूतिपटीयसाम् ।
आश्चर्यं रजसामन्यत् किमङ्ग कथयामि वः ॥३९॥
तथा हि निर्दयाश्वीयखुरक्षोदसमुद्भवैः ।
उत्पत्तावपि तैः क्षौण्यमनीयत वसुंधरा ॥४०॥
पङ्कीकृतानि तोयानि नभो नामापि नाशितम् ।
दुष्प्रवेशैश्च तैश्चक्रे मतिभङ्गो नभस्वतः ॥४१॥
स रेणुपटलव्याधिरसाध्योत्थानदारुणः ।
चकार महसां राशेरान्ध्यं लोकैकचक्षुषः ॥४२॥
तावदुत्कन्धरप्रेक्षैः स्निग्धगम्भीरगर्जिभिः ।
जालदामतडिल्लेखैः शङ्खभूषाबलाकिभिः ॥४३॥
नानारत्नप्रभाचित्रयोधचापेन्द्रचापिभिः ।
अत्यर्ककर्कशारातिप्रतापशमनक्षमैः ॥४४॥
महाभटेन्द्रनिर्मुक्तमुच्यमानास्त्रवर्षिभिः ।
अनेकशः कृतारातियशोहंसपलायनैः ॥४५॥
महापवनविक्षेपक्षमकर्णज्झलज्झलैः ।
प्रसरत्सीकरोत्करनीहारासारदुर्दिनैः ॥४६॥
दैत्यराजगजाम्भोदैः प्लाव्यमाना मदाम्बुभिः ।
महाप्रलयपर्जन्यदुर्गतेरस्मरत् क्षितिः ॥४७॥
अहो व्यसनसातत्यं मदमग्नापि मेदिनी ।
वीरानन्दपयःपूरैर्निरुच्छ्वासेव या कृता ॥४८॥
[सा] नूनमन्तरत्येव विपदं विपदुत्तरा ।
रजोवार्तापि यन्नासीत् तस्मिन्मदमहाप्लवे ॥४९॥
शान्ते रजसि सर्वत्र स्वोत्थेन तमसा सह ।
बलैः केवलसत्त्वाढ्यैर्यातं यत्र पुरः पुमान् ॥५०॥
ते सद्यः कवलीकर्तुं तं देवमनु दानवाः ।
गर्जन्तो नूतनाम्भोदाः पेतुः पातुमिवार्णवम् ॥५१॥
अत्युग्रमहसः सर्वे सर्वे प्रज्वलितायुधाः ।
तडित्वन्त इवादित्याः प्रवृत्ते भुवनक्षये ॥५२॥

अथाहवरसोत्कर्षकल्लोलोल्लासिता बभौ ।
वारिधेरिव रामस्य वाक्यमुक्तापरंपरा ॥५३॥
क्षयमग्नधरापीठसक्तसप्ताब्धिदुस्तरे ।
कुरु कृष्ण बलेऽमुष्मिन्भूयोऽप्यादिकिरिक्रियाम् ॥५४॥
शङ्के त्वद्युधि साहाय्यहेतोः प्रागपि शूलिना ।
अन्तःकोष्ठीकृतं विश्वं मुक्तमेतद् बलच्छलात् ॥५५॥
अधोऽधोऽस्य फणादानसावधानो ध्रुवं फणी ।
न चेदेतद्भराक्रान्ता न्यस्ततामिति मेदिनी ॥५६॥
नूनमब्धौ महाकूर्मः कंचिद् द्वीपमवाप्तवान् ।
अन्यथा किमवष्टम्भो बलभारं बिभर्ति सः ॥५७॥
आहो निष्पिष्यशेषं च कच्छपं च व्रजत्यधः ।
पृथुः पृथ्वीति नास्माभिरनन्ते व्योम्नि लक्ष्यते ॥५८॥
ध्रुवं बलभराध्मातब्रह्माण्डा भुवनत्रयी ।
मेघवातोत्थसद्धान्यकलसीव दलिष्यति ॥५९॥
वर्तते प्रेतवेतालयोगिनीयक्षरक्षसाम् ।
स्मशानतरुतुल्याभं नभः किलकिलारवैः ॥६०॥
किंतु नः कौतुकायैव न कोपाय किमप्यदः ।
केवलं न वराकीणामासामेतत्सहामहे ॥६१॥
व्यात्तप्रेतमुखालोकभयमीलितचक्षुषाम् ॥
स्वदर्शनमुखच्छेदखेदो यत्सुरयोषिताम् ॥६२॥
तदेनं प्रेतसंतानमुच्छिन्नत(? नत्तु) भुजंगहा ।
अहमप्यात्मनो यस्तं भावमावेदयामि ते ॥६३॥
प्रवीरपुरुषमायामेतां प्रति पताकिनीम् ।
भूमौ भवेति मामुच्चैरश्नतीव रणत्वरा ॥६४॥
देवोऽपि बलदेवोक्तं तथेति प्रतिपन्नवान् ।
अमन्दरपदाघातात् कथमर्णवमन्थनम् ॥६५॥
किं त्वेतां मर्तुमायान्तीं प्रयागप्रतिमे रणे ।
एकीभूय प्रतीच्छावः सितासितजलच्छवी ॥६६॥
उत्तीर्णे त्रिभिरेवाथ गङ्गास्रोतस्त्रयोपमे ।
हन्तुं पापमिवारार्तिं मेरोरिव गरुत्मतः ॥६७॥

स्तुमस्तनुत्रयं विष्णोर्भुवि बाणवधाय यत् ।
तस्यैव बलिबन्धार्थं पदत्रयमिवाम्बरे ॥६८॥
ते त्रयोऽपि नरव्याघ्रास्तत्कालसमरक्रुधा ।
न यावदभिधावन्ति मृगानिव दितेः सुतान् ॥६९॥
तावत् तेषां गदाघातपातितैस्तार्क्ष्यरोमभिः ।
कृतो विकचकाश्मीरगलधानारुणो रणः ॥७०॥
खगेन्द्रनखराकृष्टैस्तदन्त्रवलयैरपि ।
वेत्रवल्लीवनप्रायमजायत रणाङ्गणम् ॥७१॥
कृष्णासिद्भिःकृतैर्दोर्भिर्दृश्यन्ते भुवि दानवाः ।
वज्रच्छिन्नच्छदाः सद्यः पतिता इव पर्वताः ॥७२॥
प्रोच्छलद्दैत्यकण्ठास्रच्छटाच्छुरितमम्बरम् ।
आसीन्नवदलच्छन्नप्रेतकान्तारदारुणम् ॥७३॥
दह्यमाने गणग्रामे प्रद्युम्नक्रोधवह्निना ।
तरसापि समायाताः सन्मुखे न दानवाः ॥७४॥
प्रचण्डपवनप्राये संमुखीने हलायुधे ।
उड्डीनमवहत् पादद्विपद्भटयशःपटैः ॥७५॥

जग्राह रूपमथ दानवदुर्निरीक्ष-
मभ्रंलिहाग्रमुतसोदरमध्यवर्ती ।
आपूर्य विन्ध्यतुहिनाचलमध्यभाग-
मभ्युन्नतः क्षयपयोद इवासुरारिः ॥७६॥

इति भट्टलक्ष्मीधरकृतौ चक्रपाणिविजये महाकाव्ये आरचना नाम षोडशः सर्गः ॥१६॥

अथ सप्तदशः सर्गः ॥

दृष्ट्वा ततः शात्रवमन्यदन्यदुत्फुल्लदुत्फुल्लवपुर्गरुत्मान् ।
उत्थातुमिच्छोः प्रलयानलस्य ज्वालामहापुञ्ज इवोल्ललास ॥१॥
विपक्षवक्षःप्रविभेदनाय नखानसौ यन्निचकाष भूमौ ।
रणे महाप्राणकृते बभौ तदुरवाय खादन्निव यन्नगेन्द्रान् ॥२॥

अथैकसूत्रस्थपदद्वयोरःसमोद्धुरातिस्थिरकण्डकाण्डः ।
स्तब्धच्छदो नष्टनिमेषनेत्रः क्षणं खगः कृत्रिम इत्यबोधि ॥३॥
तस्याञ्जने योजितशैलराजशृङ्गातिरेकप्रतिमस्य जाते ।
विस्पष्टदष्टाघनिना मुहूर्तं विदीर्णमन्तर्बलसागरेण ॥४॥
स चर्मकर्माहितवामपक्षो नखाग्रनिर्दारणदत्तदृष्टीन् ।
शिरःपतच्चञ्चुपुटानभिज्ञानवज्ञयैवारिभटान् जघान ॥५॥
प्राप्तोऽथ गौरीपतिपक्षपातप्रवृत्तसीताद्रिनिभः ककुद्मान् ।
दिगन्तरव्यापिभिरस्य रुन्धन्नध्वानमङ्गैः खगपुंगवस्य ॥६॥
अतीतसर्गादिविनिर्गतेषु विधिष्वनेकेषु महाप्रमाणैः ।
तदण्डखण्डैर्घटितेव यस्य मूर्ध्नि स्थिता हेमकपालमाला ॥७॥
बद्ध्वा विषाणोपरि वर्णवस्त्रं शृङ्गारितो यः स्वयमेव देव्या ।
शृङ्गद्वयोत्थामरचापचित्रचण्डीशशैलेन्द्र इवावभासे ॥८॥
तस्याथ शृङ्गद्वयधूतिवेगव्याधूयमानेन सहस्रधाम्ना ।
उत्थातुमिच्छोर्जयमङ्गलार्थं नाकारि नारात्रिकदीपकृत्यम् ॥९॥
स कूर्ममप्युत्खनतेव भूयो भूयः पयोदानपि भिन्दतेव ।
गिरीन्द्रनिर्दारणनिष्ठुरेण खरं खुराग्रेण भुवं लिलेख ॥१०॥
इत्थं क्षितिक्षोदनिभेन भूयः प्रसारिताकुञ्चितपादपूर्वम् ।
संतर्ज्य गर्जिव्यपदेशवाक्यैरेहीति सौपर्णमिवाबभाषे ॥११॥
अथात्यवज्ञामदमन्दमेनमवेक्ष्य तार्क्ष्यो विहसन् विरेजे ।
अभ्यर्णमेवेप्सितवज्रमुक्तिः सविद्युदुद्गार इव क्षयाब्दः ॥१२॥
मिथः प्रहारप्रतिबद्धवेगतिर्यक्प्रवृत्तैः पवनातिरेकैः ।
उड्डीनसेनाभरनिर्जनाजिनिराकुलाभ्यां जघटे भटाभ्याम् ॥१३॥
शिरःप्रहाराः परमस्वरस्थैर्दृष्टा मनुष्यैः परमङ्घ्रिघाताः ।
सर्वाङ्गतत्संगरदर्शनं तु तद्गौरवादेव जनस्य नासीत् ॥१४॥
तद्घातघोषातिशयेन तेन स्फुटत्सु तत्केवलनिर्मितेषु ।
समस्तजन्तुश्रवणेषु धातुर्बभूव भग्नाम्बरकातरा धीः ॥१५॥
क्षेमं द्विजानां च गवां च भूयादित्याशिषेव त्रिजगज्जनानाम् ।
छिद्रप्रतिच्छिद्रतदन्तरज्ञौ तौ नानुभूतां क्षतमात्रमेव ॥१६॥
अथानुरक्ताविव जातलज्जौ परस्परं जीवितरक्षयैव ।
उभावशेषाङ्गसमर्पणेन तावारभेतां मनसः प्रियाणि ॥१७॥

यान् यान् वृषस्ताक्ष्यर्शरीरभित्तौ शृङ्गप्रहारैर्विदधाति गर्तान् ।
तांस्तानिवापूरयितुं गरुत्मानस्यात्मतस्यामिषपङ्कपिण्डान् ॥१८॥
अथैकशृङ्गप्रतिभिन्नमेनमुदस्य दूरं ददृशे ककुद्मान् ।
धृत्वेव गोवर्धनमेकदोष्णा गोपीकटाक्षस्नपितोः मुरारि ॥१९॥
अहिद्विषाप्यस्य ललाटमज्जञ्चञ्चूकृतस्थामवशात् कथंचित् ।
आकृष्टमुत्क्षिप्य वपुर्विषाणाद् वृषस्तु मूर्छामिहत पपातः ॥२०॥
ततः सदैत्येऽपि बले गणानां वभौ पतन्ती बलदेवदृष्टिः ।
सपत्रखण्डं वनमम्बुजानामुन्मूलयन्तीव तुषारवृष्टिः ॥२१॥
शक्रोऽन्यदा मन्दरमन्यदैव कैलासमुल्लासितवान् दशास्यः ।
तत् केन लीलाञ्चितयोस्तदानीमुर्वोस्तदूर्वोरुपमानमस्तु ॥२२॥
अथाम्बरश्यामनितम्बमूर्धा ददृशिवारीन् विरराज रामः ।
नैशान्धकारद्वितयान्तराले ज्वलद्गुरुग्रीष्मदिनायमानः ॥२३॥
स वीक्ष्य तत् सैन्यमवज्ञयैव ययौ मनस्वी मदमन्थरं यत् ।
स्वस्यैव मन्ये तदनन्तनाम्नः पातालसंस्थस्य भिदा भियेव ॥२४॥
क्षणाच्च तस्योद्यतमाजिमध्ये रराज सीरं वसुदेवसूनोः ।
अस्मारि यस्माद् बलिबन्धनार्थमुत्थापिताकुञ्चितवामनांह्रिः ॥२५॥
अथास्य वेगाद् वहता हलेन कृतं रणक्षेत्रमकण्टकं तत् ।
सत्त्वद्वितीयस्य हि तद्बलस्य न धूरपूर्वा युधि दृष्टपूर्वा ॥२६॥
कदाचिदंशस्थहलः स रेजे करांह्रिनिर्मूलितवैरिसैन्यः ।
कर्णान्तमुक्तेन महाङ्कुशेन देवासुरे दिव्य इव द्विपेन्द्रः ॥२७॥
ततः प्रमाथप्रवरो मनस्वी नस्वीकृतप्राणभयः कदाचित् ।
तं माल्यवानाजिसहस्रवेधाः क्रुद्धं हरेः पूर्वजमभ्यधावत् ॥२८॥
तं वीक्ष्य हृष्टो हरिपूर्वजन्मा स स्मान्यवीरोल्लपनप्रकारैः ।
प्रेम्णेव संभाषितवान् सलीलं हलेन भुग्नाग्रभुजोपमेन ॥२९॥
तत्खेटकप्रान्तहताहतेन यल्लाङ्गलेनोच्छलितं बलस्य ।
प्रचण्डचण्डीशपदातिकार्तिस्तदम्बरारोहणहेतुरासीत् ॥३०॥
दृष्ट्वा च दुष्प्रापमथास्य वीर्यमिहाप्यहो किंचन संभवीति ।
शश्वत्त्रिलोकीजयसौख्यसुप्तं मनो मनाग् जागरितं बलस्य ॥३१॥
सौपर्णचञ्चूपुटनिष्ठुरेण ततस्तु तत्सीरमुखेन सद्यः ।
दार्ढ्यं दधत् कच्छपकर्परस्य द्वेधा कृतं चर्म पुरारिपत्तेः ॥३२॥

भूयस्तथा तेन हठात् प्रविश्य प्रत्यस्य मूर्धानमसिव्र्युदासि ।
यथा दिवि प्रत्युत तद्गतानां बभूव भूमेः पविपातशङ्का ॥३३॥
तावत् पतन्नेव हलप्रहारत्रुटचत्सनिस्त्रिंशभुजः स दृष्टः ।
दुर्गाग्रशाखीव पविप्रपातात् क्वापि व्रजन् स ध्वजकेतुदण्डः ॥३४॥
प्राप्तं ज्वरेणाथ रणप्रकोपदष्टोष्ठवल्लीविवृताननेन ।
प्रवेशदानार्थमिवोदरान्तःसंक्रामतामातुरजीवितानाम् ॥३५॥
भागस्त्रिमूर्ध्नः पिशिताशनस्य चानूरुभागेन समं समेत्य ।
किमुत्थितोऽसौ हरिपूर्ववैरात् त्रिपादमूर्धज्वरकैतवेन ॥३६॥
यः सन्निपन्नेषु सदैव तिष्ठन् कृष्णायसः पूरपरंपराभिः ।
विवर्धिताभ्यामिव भीमरूपः प्रोत्फुल्लनासापुटकोटराभ्याम् ॥३७॥
स भस्महेतिः प्रति सीरपाणिमप्राकृताकारतिरोहितद्यौः ।
अपि प्रतापोग्रमवज्ञयैव राहुर्विवस्वन्तमिवाभ्यधावत् ॥३८॥
कल्पान्तवात्यातिमहाजवानि जङ्गामरुत्पूरवहद्बलानि ।
कुर्वन् बलः क्रीडति केवलं तु सव्यानि वामानि च मण्डलानि ॥३९॥
मन्ये च राधामपि वेत्ति हन्तुमत्यर्जुनः शूलधरज्वरोऽसौ ।
सवेगदुर्लक्षतरोऽपि रामः शरव्यतां यस्य युधि प्रयातः ॥४०॥
तथा हि तेनैष चिरं निरीक्ष्य स्वतोऽपि कोपादधिकं ज्वलद्भिः ।
भुजंगमाकारभुजप्रमुक्तैराताडितो भस्मविषस्फुलिङ्गैः ॥४१॥
दग्ध्वापि दूरोच्छलितैस्ततस्तैर्महाप्रमाणं शिखरं सुराद्रेः ।
नाकारि यत्र क्षतमात्रमेव वन्दामहे तद् बलदेववक्षः ॥४२॥
शेषैरपि प्रज्वलिताखिलाङ्गैरकारि नारायणपूर्वजन्मा ।
उत्थास्यदत्युद्भटकालकूटप्रागब्धिनाऽनर्चितमन्दरश्रीः ॥४३॥
दग्धास्यदोलायितरुद्रशैलश्लथैरथाशेषशरीरबन्धैः ।
देवेन सर्वार्तिहरेण सार्धं मदाक्षमन्दाक्षरमित्यवादीत् ॥४४॥
तथैव कम्पः पुलकस्तथैव प्रोत्फुल्लनासापुटता तथैव ।
रणोचिताकारभृतोऽपि कृष्ण क एष मे शक्तिहरोऽधिकारः ॥४५॥
चित्रं प्रदाम्रेडनशादमीभिः परस्परं दत्तभरप्रविष्टैः ।
स्वैरेव चूर्णीक्रियमाणकल्पमात्मानमङ्गैरवलोकयामि ॥४६॥
ततः पुरा पूरितबाहुमध्यमन्थाचलेन्द्रस्मृतिदानदक्षम् ।
तं पिण्डपीयूषमयैरिवाङ्गैराश्वासयामास रथाङ्गपाणिः ॥४७॥

तयोः पयःक्षीरघनेन तेन महात्मनोरङ्गसमागमेन ।
दूरीकृता दूरतरं तदानीं सव्योमचन्द्रातपयोरपि श्रीः ॥४८॥
अथात्र मन्त्रौषधिमात्रसाध्ये क्षुद्रे कथं [त्रा]समुदीरयामः ।
इत्थं जुगुप्साक्षण एव भर्तुः प्राविश्यत च्छिद्रविदा ज्वरेण ॥४९॥[1]
अतिघ्नतस्तस्य तमादिदेवमासीत् फलं केवलहस्तबाधा ।
हरेः पुनः सर्वविदोऽपि चित्रं हन्तीति संवेदनमेव नासीत् ॥५०॥
न्यधत्त देहे निजबाहुबन्धं देवो हरिः का खलु मुक्तिरन्या ।
रुष्टः कथं मे न स न प्रसक्तो ज्वरस्तु मुक्त्यन्तरबुद्धिरन्धः ॥५१॥
स कालपाशाधिकमाकलय्य दोःपाशमीशस्य तदङ्ग एव ।
ज्वरः पराभूतिमहोपतापव्यथाविलीनाङ्ग इव प्रविष्टः ॥५२॥
ततः स देवो हरिरप्यपूर्वमौर्वेण साक्षादिव वारिराशिः ।
प्रविश्य तेन ज्वलनात्मकेन प्रचक्रमे शोषयितुं महात्मा ॥५३॥
सृष्टो ज्वरः कंसभिदापि तस्मात् तं रौद्रमाकृष्य महाज्वरं यः ।
रुद्रः समुद्रादिव कालकूटं न यावदासीत् कवलं चिकीर्षुः ॥५४॥
तावत् त्रिलोकीविजयक्षमोऽपि ज्वरः परित्राणपरः पुरारेः ।
दूरं धरित्री लुठितेन मूर्ध्ना प्रणम्य बद्धाञ्जलिरित्यवादीत् ॥५५॥
नमोऽस्तु ते नीरनिधीयमानवेदार्थतत्त्वोन्मथनामृताय ।
नमोऽस्त्वविद्यारजनीविरामरम्योदयापूर्वदिवाकराय ॥५६॥[2]
नमोऽस्तु नन्दावसथे कदाचित् तद्देहलीलङ्घनकातराय ।
नमः कदाचिद् बलिबन्धनार्थमुत्क्षिप्तपादस्थगिताम्बराय ॥५७॥
नमोऽस्तु नास्तीति समस्तवस्तुप्रतीतिसिद्धेः परतो मुनीनाम् ।
अस्तीति यत् किंचिदचिन्त्यरूपमुदेति तस्मै परमाय तुभ्यम् ॥५८॥
त्रायस्व मां शंकरकिंकरोऽपि देवाहमद्यप्रभृति त्वदीयः ।
जानन्नपि त्वामरिदुर्निवारं निबोधये न त्वयि संप्रविष्टः ॥५९॥

---

१. एकोनपञ्चाशश्लोकानन्तरं प्रक्षिप्तोऽयं प्रान्तेऽधिकः प्राप्यते श्लोकः—
" समुष्टि[०]स्मेन च मुष्टिना च कण्ठेन वैकुण्ठमुर[:]स्थले च ।
कृतान्तदण्डप्रतिपक्षबाहुर्जघान जघ्ने च जनार्दनेन ॥५०॥ "

२. षट्पञ्चाशश्लोकानन्तरं प्रान्ते प्रक्षिप्तोऽयं श्लोकोऽधिकः प्राप्यते—
" नमः कदाचिज्जगदात्मनेऽपि संक्षिप्य नो किंचिदिति स्थिताय ।
कदाचिदन्धाकृतयेऽपि सद्यश्चराचराकारवपुर्धराय ॥५७॥ "

तपोदुरापेषु निरस्तसङ्गयोगीन्द्रबुद्धेरपि दुर्लभेषु ।
यद्येवमेवास्य मया कथंचिदङ्गेषु लभ्येत लयः किलेति ॥६०॥
यस्तु प्रविष्टोऽपि दहामि पापः स्वभाव एवैष न दूषणं मे ।
अहर्दिवं तद्गतिरेव भानुस्तथापि तापाय नभस्तलस्य ॥६१॥
आकर्ण्य तत् प्रीतमना मुरारिस्तस्याभयं च व्यतरद् वरं च ।
न केवलं मुञ्चति वज्रमेव कामं वृषा वर्षति च प्रसन्नः ॥६२॥
स्मृत्वा तवैतद्दृढदोःप्रहारपरंपरानिर्जितवज्रपातम् ।
सार्धं मया विस्मयकारि युद्धं नरो न रोगी भविता कदाचित् ॥६३॥
तं वीक्ष्य साक्षादिव कालवह्निमह्नाय निर्वापितमच्युतेन ।
क्वापि द्रुताः प्राणभयेन सद्यो रुषा ज्वलन्तोऽपि दितेस्तनूजाः ॥६४॥
अत्याज्यवीरव्रतवारितास्तु सौपर्णरामाच्युतरौक्मिणेयाः ।
दैत्येन्द्रदोश्छेदसरंहसोऽपि पृष्ठे न चेलुः पदमात्रमेव ॥६५॥
सद्योऽथ खट्वाङ्गधरः कदाचित् प्राणाहुतीकृत्य जगज्ज्वलन्त्या ।
क्षुधेव धावन् ददृशे पुरस्ताद् दृष्ट्वा पुरः पुष्कलमाजिभोज्यम् ॥६६॥
ततः समुद्रा इव संचरन्तश्चत्वार एवापरिमेयसत्त्वाः ।
वितेनिरे ते भुवनत्रयान्तःसकामकाण्डेऽपि चराचराणाम् ॥६७॥
तावद् बलेः सूनुरनूनसत्त्वः पुरस्थिते गोप्तरि शूलपाणौ ।
किमद्य कर्ता हरिणा सहेति च्छन्नं नभो दिव्यवधूविमानैः ॥६८॥
असंवृतप्रावरणा रणान्तरितस्ततः संचरति स्म गौरी ।
मुरारिवक्षःसुखलब्धनिद्रा शिरोऽपि नोदस्य ददर्श लक्ष्मीः ॥६९॥

आलोक्य सैन्यमथ मन्मथसूदनस्य
सीरध्वजो मुशललाङ्गलहेतिहस्तः ।
धावन् बभौ गुरुभरव्यथिताहिमौलि-
दोलायितक्षितिविसंस्थुलपादपातः ॥७०॥

इति भट्टलक्ष्मीधरकृतौ चक्रपाणिविजये महाकाव्ये ज्वरयुद्धं नाम सप्तदशः सर्गः ॥१७॥

॥ अथाष्टादशः सर्गः ॥

ततः स्यन्दनभारेण दूरमानमयन्महीम् ।
दलनार्थमिवारातेः कूर्मशेषतनोरपि ॥१॥
अहिग्रन्थिदृढाक्रान्तजटाजालगलज्जलाम् ।
वैरिपादात् प्रवृत्तेति संत्यजन्निव जाह्नवीम् ॥२॥
अनादिपिहितेनापि क्रोधादुन्मेषकाङ्क्षिणा ।
सविद्युतमिवाकाशं कुर्वाणो भालचक्षुषा ॥३॥
मुरारिसमरोत्कर्षहासैरुल्लासयन् दिशः ।
उद्धर्तुं क्रोधजन्मानमन्धीभावमिवात्मनः ॥४॥
दष्टौष्ठपुटनिष्ठ्यूतैर्भीषणो रदरश्मिभिः ।
युगान्तगिलितस्येन्दोरुल्लसद्भिरिवांशुभिः ॥५॥
तत्कालक्रुद्धभोगीन्द्रस्फारफूत्कारजन्मना ।
अनच्छविषवर्षेण मूर्च्छयन्निव विद्विषः ॥६॥
स्वाधीनाष्टमहासिद्धिः संमुखीनमरुच्छलात् ।
मन्त्राहूतहरिप्राणैः प्रीणयन्निव पूतनाः ॥७॥
ज्वलयन्निव रोषेण जगदित्थमशेषतः ।
आजगाम क्व चक्रीति ब्रुवाणो वृषकेतनः ॥८॥
तं दृष्ट्वा देवमायान्तमुद्यतायुधमाहवे ।
चिन्तयामास निःश्वस्य महात्मा मधुसूदनः ॥९॥
अहो बत न कस्यापि नाभ्येति भवितव्यता ।
आत्मन्येव मयाऽमुष्मिन्यदद्य प्रहरिष्यते ॥१०॥
वरं भङ्गलघुत्वं मे न त्वेतज्जयगौरवम् ।
न त्वित्थंभूत एवास्मि स्थूलः सूक्ष्मो गुरुर्लघुः ॥११॥
किं तु पुत्रपराभूतिप्रोद्भूतक्रोधदुर्धरः ।
रमते बाणनिर्वाणमकुर्वाणो न लाङ्गली ॥१२॥
न च त्यजति दैतेयं जगदेकभटो भवः ।
नयानयविचारो हि दूरे चरति मानिनाम् ॥१३॥
अर्हामि भवसंग्रामे न च ज्येष्ठमुपेक्षितुम् ।
स्वर्भानुग्रहणे भानुमुन्मुञ्चति न चन्द्रमाः ॥१४॥

इत्यादि चिन्तयत्येव देवकार्यविचक्षणः ।
दृष्ट्वा रथिनमीशानमित्यूचे विनतासुतः ॥१५॥
सेयमपक्रिया गुर्वी यदुर्वीतलवर्तिनः ।
रथस्थेन समं भर्तुर्दर्शनं शूलपाणिनः ॥१६॥
एतदाकर्ण्य वर्णान्तन्यस्तस्मेरविलोचनः ।
वीक्ष्य दाक्षिण्यसद्भावस्तवेत्यूचे गदाधरः ॥१७॥
ततस्तं रामवामोऽसौ देवः प्रद्युम्नदक्षिणः ।
आरुरोह जगाहे च दिवं विबुधदुन्दुभिः ॥१८॥
रथात् तुङ्गाद् भुजंगारिः किं तु यत्रारुरोह सः ।
पक्षपाते पुरारातिरतितुङ्गतरो मतः ॥१९॥
अथामरवधूनेत्रपीयमानाननद्युतिः ।
देवं प्रति पुरारातिं प्रतस्थे देवकीसुतः ॥२०॥
तं विस्फुरन्तमालोक्य न सेहे वृषकेतनः ।
असहिष्णुस्वभावा हि तेजस्विषु महेश्वराः ॥२१॥
अथातिरभसप्राप्तः प्रोवाच क्रोधदुर्धरः ।
कटूक्तिच्छद्मना कण्ठात् कालकूटमिवोद्वमन् ॥२२॥
एकैकं कृष्ण कल्पान्ते खिद्यमानस्य खादतः ।
त्वमित्येकस्थसंसारसुखभोज्यमिदं मम ॥२३॥
असज्जितज्यमालोक्य पिनाकमपसर्प वा ।
तत्तज्यमिदमीक्षन्ते ये परं पृष्ठचक्षुषः ॥२४॥
केशवोऽपि तदाकर्ण्य निसर्गोदीर्णमानसः ।
ऊचे स्मितलवाकीर्णकपोलललिताननः ॥२५॥
घ्नतामपि न वः श्रेयः श्रीकण्ठ कठिनं वचः ।
को दोषः प्लोषयन्नेव यदि शीतो हिमाचलः ॥२६॥
तप्यमानोऽपि माधुर्यमनुज्झन् कठिनो भव ।
इक्षोरिव रसो रुद्र येन यासि महार्घताम् ॥२७॥
मा वृथैव कृथाः खेदमग्रणीः शमिनामसि ।
वशमासां वराकीणामागमः शंकर क्रुधाम् ॥२८॥
आचार इति हन्यन्ते मखेषु पशवो यथा ।
रणेषु रिपवोऽप्येवं रुदद्भिरिव सज्जनैः ॥२९॥

परित्यज दुरालापमारोपय शरासनम् ।
सिद्धये मुखतीक्ष्णत्वं शरस्यैव न धन्विनः ॥३०॥
अरेर्महिमसाराणां तासामसहनो गिराम् ।
आददे द्विगुणक्रोधदुर्धरः कार्मुकं हरः ॥३१॥
जिह्वाविलीनविश्वेन नखद्विःकृतवेधसा ।
धृते धनुषि रुद्रेण चकम्पे भुवनत्रयी ॥३२॥
मुष्टिन्यस्तभरं तेन नूनमारोपितं धनुः ।
एका भूः सहते भारं सप्तापरतनोः कथम् ॥३३॥
अथ त्रिभुवनभ्रान्तमीमज्यानिनदच्छलात् ।
व्यापिनापि स्वरूपेण जगर्जेव महेश्वरः ॥३४॥
अग्रिमैकपदाक्रान्तरथभारनमद्धरम् ।
स्थानं पशुपतेरासीदस्थानं कूर्मशेषयोः ॥३५॥
चापमाकर्षतः शम्भोर्नभस्तुङ्गतनोस्तदा ।
पूर्वापरान्तरमायमासीत् पूर्वापरान्तरम् ॥३६॥
संततं गुणतूणस्थः संततं च तदन्तरे ।
दर्शयामास तत्पाणिरब्जस्रजमिवाम्बरे ॥३७॥
तीक्ष्णासिच्छिद्यमानाब्जपलाशशतसत्वराः ।
हरौ प्रवेशितास्तेन लीलयैव शतं शराः ॥३८॥
ईप्सितो दिवि तार्क्ष्येण शेषनिष्पेषशङ्कया ।
भूस्थेनापि हरिश्चित्रं यदाकर्षद्धनुर्धृताः(? तौ) ॥३९॥
तदुल्बणगुणाम्रेडनद्चापचमत्कृताः ।
उच्चैः प्रतिरवव्याजाच्चक्रन्दुरिव पर्वताः ॥४०॥
कदाचिदपि कालिन्दीस्रोतः सरति नाम्बरे ।
पूर्णायतस्थतद्बाहुसादृश्यं क दिशामि वः ॥४१॥
वक्रीभूते च दैत्यारेर्धातरीव शरासने ।
रुद्रस्याप्यपतन्मूर्ध्नि बाणव्यापत्परंपरा ॥४२॥
न विना विश्वनाशेन व्यापिनोः पतनं तयोः ।
इतीव ययुरर्केन्दुक्षित्यादिष्वपि सायकाः ॥४३॥
शरान्धकारकान्तारे तस्मिन्नभिशुने तयोः ।
व्याघ्रगुञ्जागुरुर्भूयः श्रूयते स्म गुणध्वनिः ॥४४॥

अन्योन्यमभि बद्ध्वापि शरैः सेतुमिव द्वयोः ।
अत्यद्भुत इवाम्भोधिर्नैकोऽप्येकेन लङ्घितः ॥४५॥
मार्ग एव मिथो घातनतैरग्रैस्तयोः शराः ।
पेतुर्वैरिविधासिद्धिव्रीडावक्रैरिवाननैः ॥४६॥
साचिदत्तैः शरैश्छिन्नाः शराः प्राञ्जलपातिनः ।
रि(? ऋ)जुभिर्वक्रचारिभ्यो लभ्य एव पराभवः ॥४७॥
किं च स्यन्दनसौपर्णनानावलनवञ्चिताः ।
निर्देशदेशं गत्वापि नास्पृशन्नेव तौ शराः ॥४८॥
तयोः सुचिरमप्येवं देवयोर्युध्यमानयोः ।
नैकस्याप्यजनद्धानिरब्धिवाडवयोरिव ॥४९॥
द्विषद्भुजसमिच्छेदप्रतिषेधकुहूदिनम् ।
नानुल्लङ्घ्य भवं मेने कृष्णः क्रोधाग्नितर्पणम् ॥५०॥
हेलानिर्जितशस्त्राय तस्मै विस्मितमानसः ।
मुक्तवानस्त्रमस्त्रज्ञः पार्जन्यमरिदुर्जयः ॥५१॥
अथोपरि पतन्तीभिर्लम्भितः शरवृष्टिभिः ।
धनुर्धरबलारब्धदुर्गदौर्गत्यमीश्वरः ॥५२॥
ततः प्रदीपितव्योमश्यामकौमोदकीवरम् ।
रुद्रादुदितमाग्नेयं रवेर्बिम्बमिवोदयात् ॥५३॥
मुरारिमनु तन्नेत्रवह्नाविव मनोभवम् ।
धाविते तत्र हाहेति चक्रुः शक्रपुरोगमाः ॥५४॥
तदाकर्ण्य स्मिताकीर्णकपोलोदरमच्युतः ।
चिक्षेप क्षयपर्जन्यदारुणं युधि वारुणम् ॥५५॥[1]
तदस्त्रं जलदास्त्रेण निहत्य दहनात्मकम् ।
आहतः स महागर्जिव्याजेन जयदुन्दुभिः ॥५६॥
बलाकाव्यक्तदन्ताली तडित्तरलकृत्तिका ।
कृतान्तभटधाटीव धाविता जलदावली ॥५७॥

---

१. पञ्चपञ्चाशश्लोकानन्तरं प्रान्ते प्रक्षिप्तोऽयमधिकः श्लोक उपलभ्यते—
"आग्नेयमिह तत् तेन जेटेरिव धावता ।
सामद्रे(? शेमे द्रा)गुत्थितेनापि राहुणेव रवेर्महः ॥५६॥

अथावर्षैस्तथा सद्यस्तरंगितचराचरम् ।
प्रतिभाद्दृष्टपयोभाण्डं यथा भिन्नमिवाम्बरम् ॥५८॥
यमदुर्गमहासालश्यामाम्बुदततेस्ततः ।
ज्वलद्यन्त्रोपलप्रायाः पेतुः पविमहोर्मयः ॥५९॥
वीक्ष्य पक्षाचलैः साम्यं संनद्धासुरदन्तिनाम् ।
शङ्के तदशनिव्रातं पातयामास वासवः ॥६०॥
अथ मग्ना महीयांसः शैलवाहिनि वारिणि ।
मैनाकाद्या इवाम्भोधौ नादृश्यन्त महागजाः ॥६१॥
शब्दसात्म्यमपि श्रोत्रं गर्जिभिर्दलितं द्विषाम् ।
अत्यर्थं हि प्रयुक्तानि पीडयन्ति प्रियाण्यपि ॥६२॥
अत्युज्ज्वलतरां प्राप्य श्रियमन्यमपश्यताम् ।
सा बभूव चमूर्विद्युदालोकान्ध्यानिदर्शनम् ॥६३॥
रेजिरे फणभृत्पाशैरेकीभूतभुजा भटाः ।
मुञ्चेति हस्तसांगत्यं कुर्वन्त इव चक्रिणः ॥६४॥
अश्मवर्षकृतच्छिद्ररौद्रराजतशीर्षकैः ।
शम्भोर्जङ्गमखट्वाङ्गसदृशायितमग्रगैः ॥६५॥
ततः फणसहस्रेण नभस्तलविसारिणा ।
कृतो भुजगराजेन विभोरुपरि मण्डपः ॥६६॥
अहेः फणवितानेन रुद्धे नीरन्ध्रमध्वनि ।
जातो दिवि महानूर्ध्वं वर्धमानाम्बुविद्रवः ॥६७॥
स ब्रह्मलोकपर्यन्तमुच्छलल्लोलबुद्बुदम् ।
उद्वक्त्रकुहरावर्तस्तस्थौ पाथः पिबन् बली ॥६८॥
अगस्त्यचुलुकप्रायाः सहस्रं यस्य ताः फणाः ।
गणनैव न तस्याहेर्घनपत्रपुटोदकम् ॥६९॥
अभ्रशुभ्रैः फणापीठैः सोपनेतुं पयोधरान् ।
नूनमिन्दुप्रभागौरः शरत्काल इवोत्थितः ॥७०॥
सा तुङ्गफणभोगीन्द्रव्याजादजशिरःस्थिता ।
प्रतिप्लवार्थमुत्तस्थौ गङ्गेवास्य सहस्रिणी ॥७१॥
ग्रसते सोऽम्बुदव्रातमावियद्विततैः फणैः ।
लीलयैव तमःसार्थं निशानाथः करैरिव ॥७२॥

प्लुष्टः पविः पतन्नेव तद्वक्त्रविषवह्निना ।
मार्तण्ड इव कल्पान्तपावकेन बलीयसा ॥७३॥
जिह्वायुग्मैर्भुजंगस्य स्पृशद्भिरपि दुःसहैः ।
विषक्तैरिव वावल्लैश्चक्रिरे शतधा घनाः ॥७४॥
तं मानमेदुरो देवः पश्यन्नस्त्रजयक्षमम् ।
सद्यः संकर्षणच्छद्मा शेष[ः] स्वं रूपमाददे ॥७५॥
ववल्ग हिमशैलेन्द्रदीर्घदेहो महोरगः ।
भ्रमन्मन्थमहाशैलशृङ्गोच्चयचलैः फणैः ॥७६॥
तं हर्षमिव वर्षद्भिर्वीक्ष्य वासुकिना मुखैः ।
दृढीकर्तुमिवेत्यूचे सहस्रेण सहस्रशः ॥७७॥
मुरारिहरयोः कार्यमावां तौ शेषवासुकी ।
यात्वधो वाद्य भू[ः] स्ताद्यौ(? द्वा) छत्रभङ्गो रसातले ॥७८॥
इत्युक्त्वा तमभिप्राप्तः कोपप्रज्वलितैः फणैः ।
भूरिभास्वद्दुरालोकः प्रलयस्येव वासरः ॥७९॥
बलिना वारुणास्त्रेण सप्तार्णवमहोद्धतैः ।
आतस्तरे फणैर्व्योम पाठीननिवहैरिव ॥८०॥
लाङ्गूलकुण्डलच्छन्नभुवोरपि नभःस्पृशोः ।
तयोः शिरसि चन्द्रार्कौ चक्रतुर्मणिविभ्रमम् ॥८१॥
अथोल्बणफणापीठसहस्रद्वयजन्मना ।
आसीदास्फालशब्देन ब्राह्ममण्डमिव द्विधा ॥८२॥
कांश्चिद् वितत्य बिभ्राणौ घ्नन्तौ संवृत्य कांश्चन ।
कुन्तवारणिकाहस्तौ मध्ये तैरिव तौ फणैः ॥८३॥
रेजे राशिः फणाव्रातघातजो विषविप्रुषाम् ।
उल्मुकश्रेणिसंघट्टजन्मेवाग्निकणोत्करः ॥८४॥
ग्रासीकृतमिन्यो(? वो)पांसमध्यमुक्ताफणागणैः ।
स्थूलास्रबिन्दुवर्षीव चक्रुस्तन्मणयोऽम्बरम् ॥८५॥
अथातिदूरमुच्छिष्टत्कोपवात्या वशीकृतौ ।
चूर्णीचक्रतुरङ्गानि तावावर्त्य परस्परम् ॥८६॥
तयोः पालीपरिवर्तक्रमोत्थाः फणवायवः ।
चक्रिरे ग्रहनक्षत्रमण्डलं मुहुरुत्पथम् ॥८७॥

अपि तौ धन्विनामाद्यौ नैव प्रापतुरन्तरम् ।
शेषाहिमहिराजं च हन्तुं हरजनार्दनौ ॥८८॥
तावदावर्तितग्रीवा शेषेण फणभृत्पतेः ।
कदलीफललुम्बीव ललम्बे फणमण्डली ॥८९॥
अथ कतिपयलक्षस्वर्णशैलादिशृङ्गे
प्रसरति सति वारां सर्वतोऽपि प्रवाहे ।
प्रशममसमशक्तिः कर्तुमम्भोधराणा-
मकृत हृदि महास्त्रं वायवीयं वृषाङ्कः ॥९०॥

इति भट्टलक्ष्मीधरकृतौ चक्रपाणिविजये महाकाव्ये हरिहरसंयोगो नामाष्टादशः सर्गः ॥१८॥

अथैकोनविंशः सर्गः ॥

ततः प्रचण्डानिलपञ्चवक्त्रद्रवत्पयोदद्विपमण्डलीभिः ।
नीता इवापः पुरतो विधाय दिशो दशापि क्वचिदेव याताः ॥१॥
गते गलद्वारि कणच्छलेन बाष्पायमाणाब्दमुखे जलास्त्रे ।
मुक्तो हरेण त्रिजगद्वधाय प्रयत्नरक्षस्त्रिशिखोऽपि शूलः ॥२॥
अनेकसूर्योदयदुःसहानामनल्पकल्पान्तपरंपराणाम् ।
त्रिशूलतेजःप्रसरापदेशादहःसहस्रैरिव संगतं तैः ॥३॥
पलायमानोऽपि हरत्रिशूलरश्मिच्छटाग्रस्तगभस्तिमालः ।
रेजे रविः पाकदशानिरस्तसमस्तपक्ष्मेव कदम्बगोलः ॥४॥
तं वीक्ष्य विक्षिप्तमशेषलोकसंहारहेतोरिव भैरवेण ।
मुमोच देवोऽपि रथाङ्गपाणिः कौमोदकीमन्तकबाहुदीर्घाम् ॥५॥
तयोर्मिथः संयुधि बद्धवेगमाचन्द्रसूर्योच्छलितैः स्फुलिङ्गैः ।
नाकारि नोत्पातजरक्तबिन्दुपरंपरापातभयं जनस्य ॥६॥
क्रमेण ताभिर्घनघातघोरकौमोदकीघातपरंपराभिः ।
रश्मिच्छटाच्छन्नमपि स्मरारेर्निस्तेजितं लोहमिव त्रिशूलम् ॥७॥
सहस्रभानुप्रतिमप्रभावं जिह्वेव सा राहुमहाग्रहस्य ।
तथा हठादग्रसत त्रिशूलं यथास्य मुक्तिः सुकरैर्बभूव ॥८॥

जेतुं गदामक्षममात्मशूलमालोक्य मीतामरवीक्षितेन ।
अन्तःक्रुधा कंसरिपोर्वधाय शरः पुरामन्तकरो हरेण ॥९॥
मुक्त्वा मनःप्रेरकमात्रशक्तिं ज्वलच्छिखिच्छद्मधरः स मन्ये ।
साक्षाद्विषद्घातनिमित्तभूतं कोपानलस्तद्भुजमाजगाम ॥१०॥
आहोस्विदालोक्य स विश्वरूपं शरच्छलात् तं कवलीचिकीर्षुः ।
जिह्वालतालोलशिखः स्मरारेस्तृतीयनेत्राग्निरगाद्दिवाग्निः ॥११॥
रुद्रोऽपि कोपारुणदारुणाङ्गः स्फुरच्छिखं तं विशिखं दधानः ।
अदृश्यत क्रूरतडित्करालकल्पान्तसंध्याजलदायमानः ॥१२॥
ज्ञातेऽपि तस्मिन् विधृतेऽपि चक्रे विमुच्य विद्वानथ जृम्भणास्त्रम् ।
चकार जृम्भातुरमेव रुद्रमद्रोहकृत् साधुषु कैटभारिः ॥१३॥
आलोक्य च प्रच्युतशस्त्रमेनं निनाय नन्दी समराद् वहिस्तः ।
पारे पयोराशिमपेतभानुं भास्वन्तमह्नीव गलत्यनूरुः ॥१४॥
क संगरस्तौ यदुभावभिन्नौ जयाजयौ च क विना विशेषम् ।
वयं तु कृष्णास्त्रभुवा तमीशमासाद्य मोहेन विमोहिता[ः] स्मः ॥१५॥
स्थितैः सदा तद्रिपुरक्तलोभाद् धुरि ध्वजाग्रे च पिशाचरङ्कैः ।
संचारिकोल्लापुरदारुणेन प्राप्तो रथेनाथ कुमारवीरः ॥१६॥
अत्यन्तकोपादपि कम्पते स्म यत् तज्जनैराकलितो विशाखः ।
अजस्रमन्तर्भयवेपमानद्विषन्मनोवासवशाद्दिवोच्चैः ॥१७॥
ततः कुमारो मुरजिद्विधेच्छुराच्छादितज्यावधिरीकृताशः ।
चक्रे शरौघस्थगितोग्रभानुरुत्खातनेत्रामिव भूतधात्रीम् ॥१८॥
पतत्पुराजस्रमसौ मुरारेः शरेषु भास्वत्किरणोज्ज्वलेषु ।
जिगाय फुल्लाब्जसरोविलासमुल्लासिषड्वक्त्रधरः कुमारः ॥१९॥
वायव्यमेको दहनास्त्रमन्यः पार्जन्यमन्योऽप्यनुकार्त्तिकेयम् ।
त्रयोऽपि ते त्रीणि ततः सरोषमस्त्रोत्तमानि व्यसृजन्नजेयाः ॥२०॥
तिर्यक्प्रवृत्तैः समरुद्भिरेकैरन्यैः सवह्निप्रसरद्भिरूर्ध्वम् ।
घ्नैः परैः साद्भिरधःपतद्भिस्तददृभुतं किंचिदभूत् तदानीम् ॥२१॥
ब्रह्मास्त्रमादत्त गुहोऽपि कोपाज्जित्वा यदस्त्रत्रितयं विरेजे ।
वर्षादिकालत्रितयं निरस्य साक्षादिवोद्भूतमहः क्षयस्य ॥२२॥
देवोऽपि मत्वा तदनन्यसाध्यमथाददे चक्रमसाधुवक्रः ।
बभौ नभस्तुङ्गविशालदेहः स येन भानोरिव मण्डलेन ॥२३॥

१. 'नभःश्याम–' इति वा पाठः ।

भ्रूक्षेपमात्रादपि तस्य चक्रे चक्रेण निष्पन्नभवास्त्रमाजौ ।
अपेक्षते पक्ष्मण एव भेदं जगद्दहद्भैरवनेत्रवह्निः ॥२४॥
मुक्त्वाथ शक्तिर्भवनन्दनेन [1]या तत्पुरो विस्फुरति स्म यान्ती ।
कल्पक्षयानल्पबुभुक्षितेव क्षयंकरी भैरवभर्तुरग्रे ॥२५॥
शक्तिर्व्रजन्ती दिवि चक्रपाणिमाणापहाराय हरात्मजस्य ।
चक्रे दिशां चक्रमनन्तविद्युदुल्लासदुर्दर्शमिव ज्वलन्ती ॥२६॥
स्याच्चेदनुस्वार(? न)सखः कदाचित् तडित्प्रपातप्रभवो रवोर्मिः ।
घटेत वातेन तदोपमानं तदीयघण्टाकृतटंकृतीनाम् ॥२७॥
गाढं निपत्योरसि तारकस्य चकार या निर्वृतिमुज्ज्वलाङ्गी ।
प्राप्ता वशीकर्तुमसौ मुरारिं तथा यथा पश्यति न स्वकान्ताः ॥२८॥
सा ताडका देवमिवानु राग(? म)माशालिकेवात्मजमज्ज(? ब्ज)नायाः ।
वीरैकरक्तासवपानपुष्टा दृष्ट्वा व्रजन्ती प्रति कैटभारिम् ॥२९॥
तां वीक्ष्य विश्वैकपतौ पतन्तीं तलोपरीभूतमिव त्रिलोक्याः ।
तथा हि दैत्यैरुपरीव तस्थे दिव्यैस्तु पाताल इव प्रयातम् ॥३०॥
क्षणाच्च वैकुण्ठविमुक्तघोरहुंकारमात्रेण कुमारशक्तिः ।
शशाम सा गारुडमन्त्रसारबीजाक्षरेणेव विपद्विषोत्था ॥३१॥
क्षयां गतायामपि तस्य तस्यां बभूव देवस्य स कोऽपि कोपः ।
दिव्यास्त्रमातंगघटामृगेन्द्रं येनाददे चक्रमवक्रचेताः ॥३२॥
ततः कुमारं मुरवैरिकोपज्वाला न यावत् कवलीकरोति ।
प्रत्यर्थिवातेव निवारयन्ती तां कोटवी तावदभूत् पुरस्तात् ॥३३॥
तां मुक्तकेशीमपटां च दृष्ट्वा रेजे करच्छन्नमुखो मुरारिः ।
स्फुरत्तमः स्रस्तदिनामवेक्ष्य संध्यामिवार्कमहितोर्मिरब्धिः ॥३४॥
आश्वासयच्चैवममन्दमेनामस्मै विमुञ्चामि न चण्डि चक्रम् ।
सन्तो हि पश्यन्त इवाप्नुवन्ति परापकर्तव्यनिवृत्तिहेतुम् ॥३५॥
षड्दर्शनानीव मुखानि भङ्क्त्वा जितेऽप्यरौ वेदनिभेन भर्ता ।
न सेहिरे केचन तत्प्रभावमपण्डिताः केवलपातहेतोः ॥३६॥
अप्याभिमुख्ये सति वक्रसीरप्रयातनिर्दारितपृष्ठभागाः ।
निन्दन्ति दैवार्पितभीरुचिह्नमात्मानमेके समितिश्वसन्तः ॥३७॥

१. 'स्यातः पुरो विस्फुरति स्तुपां ताम्' इति तु मूलादर्शस्थः पाठोऽसंगतः प्रतिभाति ।

प्रचण्डतुण्डाग्रनिपातनिर्यदन्त्रावलीमण्डलिता वितेनुः ।
अनल्पवेत्रव्रततीपरीतलङ्काद्रिशङ्कामपरेऽपि वीराः ॥३८॥
अन्येऽपि मुक्तद्रुतचक्रधाराप्रपातदूरोच्छलितैः शिरोभिः ।
उत्पातवातोर्मिपतत्फलानां साम्यं दधुस्तालमहीरुहाणाम् ॥३९॥
कंसद्विषत्सूनुधनुर्निनादैस्तदा यदन्ये बधिरीबभूवुः ।
स्कन्दापमानश्रुतिवज्रपातप्रभिन्नकर्णा इव कल्पितास्तत् ॥४०॥
अथात्र कीलालमहौघमज्जद्गजेन्द्ररौद्रे समरातिरेके ।
प्राप्तं शिवाभिर्विकरालवक्त्रज्वालाविपक्वासुरमांसभोज्यम् ॥४१॥
मुरारिघातोद्धृतकल्मषाणां तीर्थत्वमाकस्मिकमागतानाम् ।
आस्वाद्य मांसानि गतैः पिशाचैर्घनीकृतं तत् पदमापवर्गम् ॥४२॥

तावन्मुञ्च घृताचि वेगमधिकं मा मेनके गम्यतां
रम्भे तिष्ठ तिलोत्तमे क्व चलिता मा चापलायोर्वशि ।
इत्थं दैत्यनृणां सुदर्शनरयच्छिन्नापि कण्ठाटवी
स्थानस्थेव मिथस्त्वकारमुखराः स्वर्लोकबालाः क्षणम् ॥४३॥
प्राप्तोऽथ लाङ्गलधराच्युतरौक्मिणेयं
सौपर्णघातभयमग्नमवेक्ष्य सैन्यम् ।
अन्येद्युरेव जितशक्रकथापरेषु
बाणासुरः समितिवन्दिषु दत्तदृष्टिः ॥४४॥

इति भट्टलक्ष्मीधरकृतौ चक्रपाणिविजये महाकाव्ये कार्तिकेययुद्धं नामैकोनविंशतितमः सर्गः ॥१९॥

अथ विंशः सर्गः ॥

अगम्यभावादवसारितेऽपि समुद्रवद्दुस्तर एव रुद्रे ।
रामं दशग्रीव इवातिमत्तः स केशिकंसद्विषमित्यवादीत् ॥१॥
सार्धं मया बाहुसहस्रभाजा सहस्रभासेव तमिस्रराशेः ।
य एष ते कृष्ण सदा विरोधः पश्याद्य सद्यः परिणाममस्य ॥२॥
आहोस्विदेतन्नवनीतगन्धिगोपाङ्गनाकर्पटखण्डखिन्नः ।
युक्तं यदाकाङ्क्षसि दिव्यकन्यासुगन्धिशय्यापरिवर्तनानि ॥३॥

---

१. 'तल्पं' इत्यपि पाठः ।

अपीति बाणासुरतर्जितस्य रराज वाणी शिशिरैव शौरेः ।
उद्वृत्तसौपर्णविधूनितस्य सुधाहृदस्येव तरंगमाला ॥४॥
शम्भोः सुहृत् ख्यातसहस्रबाहुः किमद्भुतं येन भवत्यवख्या ।
किंत्वेष युष्माकमकोमलानां कालः शराणां न दुरक्षराणाम् ॥५॥
सन्तः श्वसन्तोऽपि परार्थहेतोररेररित्वं विदुरेतदेवम् ।
चित्तेषु तेषां करुणात्मकेषु हिंसात्मकं न्यस्यति यद् विकारम् ॥६॥
आसीत् कृतार्थः स्वयमेव नार्थी यत् तद् दयार्ता ददतोऽपि सन्तः ।
घ्नन्तस्तु वध्यानपि तत्कुबुद्धिदात्रे प्रकुप्यन्ति परं विधात्रे ॥७॥
मुञ्च त्वरामग्रत एव जल्पन् राजेन्द्र किं प्रच्यवसे महिम्नः ।
विना महिम्ना जयमेव वीराः पराभवादभ्यधिकं वदन्ति ॥८॥[1]
तदद्य वैरोचनिराजपुत्रद्वयोः प्रियं यत् तदुपाददीथाः ।
पश्यस्तु शक्रादिमहाभटेषु सद्यः शरान् मुञ्च शरासनं वा ॥९॥
आकर्ण्य तद् वह्निरिव ज्वलित्वा न यावदुत्तिष्ठति दैत्यराजः ।
स्फुलिङ्गपिङ्गच्छदविन्दुचित्रस्तावच्छिखी धूम इवोदतिष्ठत् ॥१०॥
सर्पासनैकार्थचिरक्रुधेव स धावितः प्रत्यहिवैरिवीरः ।
जन्मान्तरीयेऽपि भुजंगभावे न रोचमानो बललोचनाभ्याम् ॥११॥
मिथः समुत्थाय मदात् तदन्तौ गजाविव प्राञ्जलमेकदन्तौ ।
वितेनतुश्चञ्चुपुटद्वयेन विदीर्य तेनाख्यमिव प्रहारम् ॥१२॥
पतत्रघातोर्मिरयप्रवृत्तैर्मरुद्भिरुन्मार्गवहत्रिमार्गे ।
तौ रेजतुर्व्योम्नि महाप्रमाणौ पक्षाचलेन्द्राविव युध्यमानौ ॥१३॥
निष्पत्रशाखाद्रुमदीर्घपादमुदीयमानासमसंप्रहारम् ।
युद्धं तयोर्घोरतरं तदुच्चैः प्रवङ्गनक्तंचरयोरिवासीत् ॥१४॥
क्षणाच्च केकी गलरज्जुदीर्घग्रीवागृहीतो विनतासुतेन ।
आकृष्य रोषज्वलितेन गाढमास्फालितो मीन इवाप्रमाणः ॥१५॥
प्रपातिते तत्र युगान्तवातबलीयसा मूल इवाहितेन ।
दृष्टः सकारुण्यमनेकशाखः शाखीव रुद्रेण पतन्सुरारिः ॥१६॥

---

१. अष्टमश्लोकानन्तरं प्रान्ते प्रक्षिप्तोऽयमधिकः श्लोकः प्राप्यते—
"किंच त्वदुक्तेषु न मत्सरो मे क्षेत्रं तु भूत्वा बत किं करोमि ।
इमं हि धर्मारिवधाय विद्धि प्रयाति नाशपटही विरामम् ॥९॥"

प्रस्थापयामास च शूलपाणिर्नन्दीशमस्मै स्वरथार्पणाय ।
स्कन्धाधिरूढोऽपि रिपुच्छिदे यः स सेवकः किंजयजीवकारैः ॥१७॥
आरुह्य तं श्यामविशालदेहः कुन्दावदातं रथमिन्दुमौलेः ।
रराज राजा दनुजेश्वराणां प्रालेयशैलेन्द्रमिवाम्बुवाहः ॥१८॥
आरोहणार्थं वियति स्वकीर्तिः क्रुद्धेऽथ शौरावबरोहणार्थम् ।
सोपानमालेव कृता प्रसृत्य धनुर्भृता तद्भुजपञ्चशत्याम् ॥१९॥
चक्रे तदा तस्य तदप्रमाणतूणावलीमालितमंसयुग्मम् ।
सादृश्यमुद्ग्रीवविलोक्यमानशृङ्गद्वयेनाञ्जनपर्वतेन ॥२०॥
आस्फाल्यमानासु ततः सरोपं शरासनज्यासु महासुरेण ।
जातं तदेकाद्वयमेव लोके तथापि शब्दोऽभवदप्रमाणः ॥२१॥
संधानहेतोः कलितेषुभिस्तैर्बभार भीमाकृतिभिः स हस्तैः ।
उज्जिह्मकृष्णाहिफणाप्रतानदुष्प्रेक्ष्यपातालतरूपमानम् ॥२२॥
वक्रीभवद्दीप्तधनुःपरीतश्यामायतानेकभुजः स जज्ञे ।
कल्पान्तसोपग्रहधूमकेतुमालाकरालाम्बरदुर्निरीक्षः ॥२३॥
ताभ्योऽथ कोदण्डपरंपराभ्यस्ताभिर्भुजादण्डपरंपराभिः ।
अमुक्तसूर्यांशुमरुत्प्रचारा मुक्ताः शरास्तेन च संख्यया च ॥२४॥
वीरः स वभ्राज भुजासहस्रप्रक्षिप्तनानायुधरुद्धरोदाः ।
समन्ततः संततवज्रवर्षी युगक्षयक्रुद्ध इवाम्बुवाहः ॥२५॥
क्रुद्ध जगज्जेतरि दैत्यराजे स्मितं यदीषद् बलकेशवाभ्याम् ।
अद्यापि तं विस्मयमुद्वहन्तः शङ्के निमेषं न सुराः स्मरन्ति ॥२६॥
अलं प्रकोपेण कियानयं वः प्रद्युम्नरामाविति वारयित्वा ।
आमृश्य मौर्वीं वसुदेवसूनुः शार्ङ्गं मनाग् जागरयांचकार ॥२७॥
अहो यशः शार्ङ्गधरस्य शुभ्रमेवंविधेनापि धनुर्बलेन ।
दैत्याय मुक्तैरपि यस्य बाणैर्मर्माणि शम्भोः शकलीकृतानि ॥२८॥
तद्ग्रस्तमाच्छिद्य यदत्ति जिह्वा विहाय जिह्वायतनं तदास्यम् ।
शरच्छलेन प्रति दैत्यराजं कृतान्तदन्तैरिव धावितं तैः ॥२९॥
किं रोमकोटित्रितयेऽपि सार्धे वक्त्रं रिपोरस्ति न वेति वेत्तुम् ।
ध्रुवं स बाणैः प्रति रोमकूपमापूरितः कैटभमर्दनेन ॥३०॥
अथातितीव्रोऽपि सलीलमेव मुरारिमुक्तैर्व्यथितः स बाणैः ।
ज्वलन्नपि स्वल्पिकयापि वृष्ट्या घनेन मन्दीक्रियते हुताशः ॥३१॥

हत्वा हरिं सोऽपि शितैः शरोघैर्ब्रह्मास्त्रमुच्चैः कुपितो मुमोच ।
दन्तक्षतानन्तरमत्यसाध्यं क्रुद्धो विषोद्गारमिवासिताहिः ॥३२॥
उत्तिष्ठतैव प्रलयोपमेन ग्रासीकृतस्तेन सहस्रभानुः ।
यस्योदतिष्ठज्जठरप्रविष्टतदन्तरा[ग्र]स्तमिवान्धकारम् ॥३३॥
घनान्धकारोदयदारुणायां तस्यामथापक्रमयामवत्याम् ।
घोरं नदद्भिर्युधि दैत्यसङ्घैर्घूकैरिवाजन्यत रोमहर्षः ॥३४॥
तावन्न सीरध्वजपद्मनाभौ न चापि तन्नन्दनवैनतेयौ ।
अस्त्रानुकारेण हि वेदकल्पाः कलेरिवान्तेन तिरोहितास्ते ॥३५॥
तेनाप्यथास्त्रेण तथान्धकारे हन्तव्यसम्यक्करणेच्छयेव ।
मुक्ताः परोद्भूतयुगान्तकालप्रचण्डचण्डांशुकराः शरौघाः ॥३६॥
तद्वैष्णवेनाथ विधातुरस्त्रमुत्सार्य देवोऽपि चकार कृष्णः ।
चक्रे हशं तन्निवसज्जयश्रीः प्रत्यर्पितप्रेमभरार्द्रदृष्टिः ॥३७॥
सहस्रचक्षुष्कसहस्रशीर्षसहस्रपाण्यंह्रिसहस्रनाभिः ।
चक्रच्छलाद् भैरवपूर्वभुक्तं वैराय तद्विश्वमिवोदतिष्ठत् ॥३८॥
आहोस्विदुच्चैः कुपिते मुरारौ धाराशिखाचक्रसहस्रयोगात् ।
छेदानुपक्त्वासुरदोःसहस्रसंहारसामर्थ्यमिवाददे तत् ॥३९॥
रथाङ्गमुक्तैः पवनातिरेकजलातिरेकज्वलनातिरेकैः ।
आच्छादितं सर्वत एव सर्वं जगज्जगाहे विकृतैश्च भूतैः ॥४०॥
तथा हि नीताः किल कूटभावं वात्याभिरावर्त्य तदातनीभिः ।
पाषाणरेणुद्रुमराजयो यास्ताः पर्वतोत्पत्तिमुदाहरन्ति ॥४१॥
हरोत्तमाङ्गप्रपतत्त्रिमार्गाभरप्रमाणौघसहस्रघोरम् ।
प्रवर्ततस्तस्य तडित्सहस्रप्रचण्डभासः प्रलयो न किंचित् ॥४२॥
प्रपातगङ्गेव दिवस्तदानीं भूमेः पयोराशिरिवोदतिष्ठत् ।
प्राप्ता पयःपूरितरोहितत्वात् प्राचेतसं लोकमिव त्रिलोकी ॥४३॥
अथ ज्वलन्त्या दशदिग्विभागमुत्तप्तकार्तस्वरभासि वह्नौ ।
आसीदकस्मादपि भूय एव हेमाण्डवासप्रतिभा विधातुः ॥४४
ततः प्लवंगेष्विव धावितेषु पिशाचसैन्येषु गिरीन् गृहीत्वा ।
अवेदि वैरोचनिराजसूनोर्लोकेन लङ्केशदशा भवित्री ॥४५॥

---

१. '°वान्तकेन' इति वा पाठः ।

भूकम्पदोलायितशैलशृङ्गप्रपातजैर्जर्जरभूरजोभिः ।
आपूर्य चक्रे सकलाचलेन्द्रानुदग्रवल्मीकमयीव धात्री ॥४६॥
दोःखण्डनायाथ सहस्रबाहोः प्रक्षेप्तुकामस्तदनादिदेवः ।
भूयोऽपि धूम्राक्षमुखीं पुरस्तादस्ताम्बरामैक्षत कोटवीं सः ॥४७॥
आलोक्य तां मीलितनेत्र एव मुमोच वाचं कठिनां मुरारिः ।
अचन्द्रसूर्योदयदुर्निरीक्षः सौदामनीं नैश इवाम्बुवाहः ॥४८॥
सुदर्शने हन्तुमपेक्षमाणे क्व बाणरक्षा बत कोटवीतः ।
न त्वन्तरस्थापितमाल्यमालाशिरः पतद्वज्रनिवारणाय ॥४९॥
अथोदयाद्रेरिव दैत्यशत्रोर्दृष्टं वियत्येव वहद्रथाङ्गम् ।
आक्रम्य यद् दानवराजमाजौ रराज तामिस्रमिवांशुमाली ॥५०॥
मा स्मैकदिग्भारविसंस्थुलस्य पाताद् वलक्षस्य महीति हेतोः ।
इत्येव तद्दक्षिणवामबाहुच्छेदक्रमेणाकृत कृष्णहेतिः ॥५१॥
पपात बाणोऽथ भुजासहस्रच्छेदोत्थरक्तौघसहस्रमाली ।
वहन्नहःपर्यवसानशोणशोचिःसहस्रस्य रवेरवस्थाम् ॥५२॥
महेन्द्रघातप्रपतन्महीध्रमहाभराभ्यासवलीयसी भूः ।
तथापि तावत्परिमाणबाणप्रपातपिष्टा कथमप्यतिष्ठत् ॥५३॥
द्विधा विधायाथ भुजाः मुरारेश्चक्रेण चन्द्रायितमेत्य कृष्णम् ।
स्निग्धं च लब्ध्वा गुणवच्च पात्रं दैपं वपुः स्वीकुरुते कृशानुः ॥५४॥
देवोऽपि तस्यामरगोत्रशत्रोः शिरश्छिदे तत् पुनरादिदेश ।
न ह्यन्धकारस्य कदाचिदेव काचिद् दशा यां सहते विवस्वान् ॥५५॥
अथादिदेवः पुरुषोत्तमोऽसि जेता न भूतो न च ते भविष्यन् ।
इति ब्रुवाणः सहसा पुरस्तात् तस्थौ हरः कैटभमर्दनस्य ॥५६॥
मा मा वधीर्माधव दैत्यमेनं प्रतिश्रुतामृत्युभयो मया यः ।
द्वयोरभेदे मयि मोघवाचि मा भूत् तवाप्यर्थविनाकृता गीः ॥५७॥
श्रुत्वा वचः कोमलमिन्दुमौलेस्तथाविधान्येव हरिर्बभाषे ।
दृष्ट्वाऽमृतौघान् प्रकिरन्तमिन्दुमुत्क्षीरपूरो न न वारिराशिः ॥५८॥
बाणासुरः प्राणिति को विवादस्त्वं यस्य विश्वेश्वर सप्रसादः ।
अहो यदा तत्र यथा तवेच्छा ध्रुवं तदा तत्र तथैव सिद्धिः ॥५९॥
व्यावर्तितं चक्रमिदं नमस्ते यामः क्षमार्थं च न यूयमर्थ्याः ।
रुपः पुरस्तादपि सज्जनानामास्तेऽत्र नीतिप्रगुणं स्वचेतः ॥६०॥

जरठमतिचिरेण प्रेम शीतांशुमौले:
　　क्षितिरुहमिव सद्यः खण्डयित्वातिदीर्घम् ।
इति निरुपधिशीतैर्मोचयामास तैस्तैः
　　पुनरपि नरकारिः पल्लवानीव वाक्यैः ॥६१॥
कलहवचनं वक्रीभूतत्रुटत्कुटिलाशय-
　　प्रकटसरसप्रेमाबन्धक्षरन्नयनाम्भसोः ।
सकलसुमहच्चित्ते चित्रं बभूव दिवौकसां
　　यदजनि मनः संसारीव द्वयोः परमात्मनोः ॥६२॥
पुष्पश्रीसमलंकृतं मधुमिव प्राप्यानिरुद्धं ततः
　　सार्धं दानवकन्यया त्रिभुवनभ्रान्तप्रतापोदयः ।
बिभ्राणः स्मरविभ्रमं स भगवानन्तः प्रविश्याखिला-
　　मुन्मत्तामिव तां चकार परितः पौरोत्सवैर्द्वारकाम् ॥६३॥

इति भट्टलक्ष्मीधरकृतौ चक्रपाणिविजये महाकाव्ये बाणदोःखण्डनं नाम विंशतितमः सर्गः समाप्तः ॥

पुष्पिका—" ॥छ॥ इति भट्टलक्ष्मीधरकृतौ चक्रपाणिविजये महाकाव्ये बाणदोःखंडनं नाम विंशतितमः सर्गः समाप्तः ॥ छ ॥ छ ॥ ६०३ ॥ छ ॥ मंगलं महाश्रीः ॥ छ ॥ छ ॥

विषमपदटिप्पणी–पूर्तिः।

सर्गः १

६. शवा मृतप्राया श्रीरित्यर्थः।

११. कथारम्भस्यादिमः श्लोकोऽयम्।

२३. चुलकं चुलुकं चुल्लकम्–इति त्रीणि स्वरूपाणि शब्दस्यास्य।

२५. परं जीवितमित्येत् स्पष्टम्।

४२. 'तृणापरार्धे' इत्यस्य स्थाने 'तीर्णेऽपरार्धे' इत्येष पाठः साधीयान्। अपरार्धे तीर्णेऽपि अपरस्यार्धस्य समाप्तावपि–इत्यर्थः।

४५. डिण्डीरो मत्स्यः।

६३. नापत्–न आपत्–न आप्तवती जाता; न अलभतेत्यर्थः।

सर्गः २

४१. कवेर्लङ्गिमा लङ्गितत्वं संकलनं यासु तादृशीभिर्भङ्गिभिः चमत्कारयुक्ताभिरुक्तिभिरित्यर्थः।

५६. त्वद्–तव सपर्या परिचर्या स्वादिता उपभुक्ता येन तादृशस्य मम–बाणस्य।

६०. विलक्षस्य लक्षणहीनस्य गुणरहितस्येति भावः।

सर्गः ३

१९. अञ्जनस्य कज्जलस्य आभा इव आभा यस्य तम्।

२८. चापस्य लता प्रत्यञ्चेति।

३५. जगतो बिभ्यतो भयं धारयतो तदीयं, उषाया नेत्रद्वितयं नेत्रद्वयं तस्य।

४३. 'मुक्तासरेणोपरिपुञ्जितेन' इत्येव पाठः साधीयान्। विसर्गप्रक्षेपो निरर्थकः। उपरि पुञ्जितेन पुञ्जीभूतेन मुक्तानां सरेण मालया–इति हेतोः।

सर्गः ४

५०. संनिधे संनिधौ।

सर्गः ५

२७. 'सूचितः' इत्यत्र विसर्गो लेखनप्रमादजः, यतः सूचितः प्रियसमागमस्य उत्सवो यस्मिन्निति सामासिकमेव समस्तमिदं पदम्।

५९. मातृमण्डलम्। मातृका मूलाक्षराणि, तासां मण्डलम्। मातृकास्थानरूपचित्रणाऽत्र निर्दिष्टा।

सर्गः ६

१०. क्रकची कर्तनकार्यविशारदः।

सर्गः ७

१०. 'अङ्गे'ति संबोधनं स्नेहद्योतकम्।

सर्गः ८

८. दरेण भयेन।

९. प्रथमं तावद् विनोदकारि विनोदकम्। द्वितीयं तु उदकेन विना विनोदकम्।

१०. प्रथमं, धीः एव मूढा=बुद्धिरेवामुह्यत्। अपरस्मिन्–एवं धीः ऊढा–धारिता, परं न वयस्या ऊढा न परिणीता–इत्यर्थः। महान् आशयो भावो यस्याः साऽसौ उषा। उत्तरचरणे तु महती चासौ आशा तया कार-

णेन 'चित्रलेखा मत्कृते प्रियमानयिष्यती 'ति स्वरूपयाऽऽशयेत्यर्थः ।

१७. सखीं मामिति ।

४७. 'प्रमोदनीकामम्+अपि' इति त्वपपाठो भाति । अधोदर्शितः 'प्रमोदम्+अन्तः कम्+अपि' इत्येष एव पाठः साधीयान् सार्थकश्च । स्थितसमर्थनन्यायेन तु–'प्रमोदनी' 'प्रमोदना' या उषा तस्याः कामं मनोभिलाषं क्षरन्ति – व्यक्तीकुर्वन्ति यानि वचांसि तैः–इति स्यात् । नैतच्चारु । 'प्रमोदना' इत्येतदेव रूपं व्यापकं, न तु 'प्रमोदनी' इति ।

५०. लावी लवनं चयनं, दीर्घ–ईकारान्तः स्त्रीलिङ्गो शब्दः । '–पुष्पाणां लाव्यस्ता ददर्श–दृष्टवती ।

६३. गूढम्+ऊढः, अत्यन्तं धारितः ।

६४. अम्बुना जलेन शीता शीतलीभूताऽनिरुद्धदर्शनेन सा प्रमदा चित्रलेखा ।

सर्गः १०

३९. मूलादर्शे 'लतातिचञ्चलाः' 'लतानिचञ्चलाः' वा वाच्यते । अत्राक्षरद्वयं न्यूनम् । के ते अक्षरे ? संभाव्यतेऽत्र 'निय' इत्येते अक्षरे अपेक्ष्येते । 'नियतिचञ्चलाः प्रकृतिचञ्चलाः ।

५३. 'नततद्वदने 'त्यादिः साधीयान् पाठः । शिरसोऽनिरुद्धवक्षसि मुक्तवत्या उषाया वदनादुदस्तः कूटोऽग्रकपालस्तस्मात् न्यस्तानि ऊर्ध्वगतानि कैतकानि–कैतकानीवानुभूतानि रोमाणि तैः, इत्याशयः ।

सर्गः ११

८. वीङ्खा नृत्यान्तर्भूतगतिविशेषः ।

२५. वत्सपेटीति । वत्सस्य प्रियबालकस्य पेटिकां प्रति गदेयं सामान्या गदैवासीत् तन्मनसि, सा त्वधुना सोपयोगेति तस्य मनसि गदां प्रति समादरो जात इति भावः ।

२९. तृणानामिमे तार्णाः, तार्णाश्च ते पुञ्जाश्च तैः । तृणपुञ्जैरित्यर्थः ।

३९. मत्तानामिभानां गजानां यः सार्थस्तस्य योऽवटश्छिद्रं तस्य लङ्घनमुल्लङ्घनम् ।

५८. सुरकन्यका अप्सरसः 'अयं भगवतो हरेः कृष्णस्य नताऽस्माकं पतिर्भूत्वा स्वर्गमागमिष्यतीति मनसि चिन्तयन्ति, इत्येवंप्रकारकं चिन्तनं बाणः करोतीति भावः ।

६७. फालखेलं–उत्प्लवनपूर्वकम् ।

७१. अन्वायिता अन्वागताः ।

सर्गः १२

६५. 'पूर्वपक्ष' शब्दे श्लेषः । उत्तरार्धे पूर्णिमान्तगणनया मासस्य पूर्वपक्षः कृष्णपक्षः । कवेः प्रादेशिक मासपक्षगणनाऽनेन द्योत्यते ।

६६. पद्मः कमलम् । पुंस्त्रियोरयं शब्दः ।

६७. 'विभ्रिभुक्त' 'विभ्रिमुक्त' इति पाठद्वयमपि दुष्टं वर्तते । 'विप्रमुक्त' इत्यपि न साधीयान् दृश्यते । श्लोकाशयस्तु स्पष्ट एव । शिवस्य नेत्रत्रय्याः कृष्णस्य च भुजचतुष्टयस्य संसारविषयं पुरः कृत्वा कलिः कलहोऽस्तु इति नारदस्य उपक्रमोऽयम् ।

सर्गः १३

४. कौलेयी शाक्तभिक्षुणी । तया

सदृशी अविद्या परमात्मनो जगदुत्पत्तौ प्रवेश-रिथत्यां व्याप्ता। अनेनैव कारणेन नारदः सर्वदा आषाढनामकं दण्डं धारयति। सामान्यतस्तु आषाढमास एव योगिभिरुक्तविधौ आषाढाख्यो दण्डो धार्यते।

१३. धौतं चानपरैर्नान्यैः स्पृष्टं च हेमपीठं तस्मिन्नुपवेशितः, तं नारदम्।

६३. अहंकारोऽप्यहंकारस्य प्रशान्तौ प्रशमने यः समर्थः स एव शोभां धत्ते प्रशस्यो भवतीत्यर्थः। अत्र द्वितीयाऽहंकारशब्दो निर्विसर्ग एव स्वीकरणीयः।

८२. पञ्चपञ्चाशत्संख्यामत्र निन्दन्ति कृष्णगृहिण्यः। संख्ययैतया दत्तोऽयमर्थो लोकेऽप्रसिद्ध एव।

८६. अन्तः पुरः, पुरो नगर्यारन्तर्भागे पिष्टान् विगीतान् मुर्मरान् लोकजल्पनानि प्रलयिता नाशयिष्यति शमिता शमयिष्यति च। कोऽयं सः? अनिरुद्धशोकः। अत्र भूतसामीप्ये भविष्यत्कालः कवेरिष्टः।

सर्गः १४

३३. मेरोर्मानं मापनं – सोऽर्थोऽस्येति मेरुमानार्थी; मेरोर्मानकरणेच्छुः।

५३. दुर्गा अनभिभवाऽपि तादृशो राज्ञः पुरी पल्ली क्षुद्रग्रामरूपा भवति। यद्वा दुर्गापल्ली शाक्तग्राम एव भवति।

६८. इच्छाजिज्ञासा पृच्छाजिज्ञासा, सोभयविधाऽपि हृदि हृदये जीर्यति क्षीयत एव, न पूर्णा भवति। स कृष्णस्तु नातितरां नात्यन्तं वेत्ति जानाति कीदृशीच्छाऽस्माकमिति।

८३. क्षमः समर्थोऽपि दूतो दौत्याद् इति हेतोर्वक्तव्यं न हन्ति न खण्डयति, नापि कर्तव्यं स्वकीयं दूतधर्मं हन्ति, त्यजति—इति भावः।

९३. दैवाद् दैवप्राबल्याद् हिमाचलो नोत्खातो नोत्खनितः। श्लेषस्तु स्पष्टार्थ एव।

९४. यावान् उमायाः पिता हिमाचलः। अनुमापिता मानं कारिता।

९५. कौ, कृष्णशिवौ कीदृशौ, तत् को जानाति। न कोऽपीत्यर्थः।

९६. कांचन कामपि कान्तिं कोमलोऽयं सुन्दरो वैनतेयः। काञ्चनको जातरूपात्मकः सुवर्णमयोऽमलो निर्मलो गिरिर्हिमगिरिः।

९९. सम्यक्प्रकारेण आम्नातो वेदो येन तत्संबोधने हे सम्यगाम्नातवेद। जातवेदसोऽत्र कलहाग्नेः।

१००. व्योमगङ्गावनं – आकाशगङ्गाजलं, तद् विनाऽन्यत् सर्वमपि तारकामण्डलं व्यावर्तयामास।

१०१. अनन्तं वय आयुर्मर्यादा यस्य तेन विवस्वता सूर्येण आजन्मतस्ते नगाः पर्वता नोल्लङ्घिता ये ते, नास्ति अन्तो यस्य स चासौ वयाः पक्षी च तेन गरुत्मता सद्यो द्रुततरं लङ्घिताः।

१०२. अहरत् + अनुभवन्तमिति प्रथमचरणे छेदः। तृतीयचरणे तु – हरश्च दनुभवो बाणश्च तौ न स्तो न जीवन्तौ भवतां, तादृशं प्रक्रममुपक्रमं मेनिरे मानितवन्तः। निराशां प्राप्ता इत्यर्थः।

१०३. अरितः शत्रुतः स्थिरं वा अदद् वां दुःखमिति यदुत्प्रेक्षितं तद् वीराणां राजा कृष्णस्तस्य स्मितपूर्वकः कलो वार्तालापो यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात् तथाभूत इति कृत्वा वारितो विः पक्षी गरुत्मान् रराज शुशुभे। स्वर्णे सुवर्णमये दीप्रे दीप्ते ईक्षणे नेत्रे यस्य स तेन गरुत्मता प्रहृकुसुमितवीचिरूपायाः स्वर्+नदी मन्दाकिनी तस्याः प्रेक्षणेन दर्शनेन मुदितम् ।

सर्गः १५

१. अहिलोकं न.गलोकमनु उद्यतानां सज्जीभूतानां, येषां – अग्रगाणामग्रेसराणां जलानामेव जलधिरावासवद् आत्रासरूपो वर्तते तानि नाकतटिन्या मन्दाकिन्याः सलिलानि पक्षिराजो दैत्यदहनोऽरि दानवक्रोधाग्नौ चिक्षेप क्षिप्तवान् । दैत्यं बाणमधिकतरं कोपितवानित्याशयः ।

१२. आसरूपो शररूपो रालो लाक्षारसः । तत्कालकोपवशेन विस्फुरित आसरालो यासां ता ज्वालास्तासामित्यादि ।

२९. डामरवैर्डमरुजन्यै रवैर्नादैः ।

सर्गः १६

७०. विगताः कचा येषां तादृशानां काश्मीराणां कश्मीरदेशवासिनां गलेषु कण्ठेषु निहितानां धानानां, अग्निना स्फुटद्भूतानां कणानां सदृशोऽरुणा रक्तः । काश्मीरकाणां निन्दारूपोऽयं कोऽपि प्रवादो गौडेषु प्रचरितः स्यादित्यनुमीयते ।

४०. राघां बलदेवादिविजयं विद्यतं वा । रामः परशुरामो यस्य सहस्रार्जुनस्य शरव्यतां प्रयातः, तमर्जुनमतिक्रम्येत्यादि ।

४९. त्रासमुदीरयामः, त्रासवचनं कथयाम इति ।

६९. सुखं सुप्ता लक्ष्मीरुपरिभागे उदस्य शिरो जलोपरिभागं न ददर्श – न दृष्टवती। यद्वा, लक्ष्मीः स्वकीयं शिरो मस्तकं उदस्य ऊर्ध्वं कृत्वा न ददर्श, दृष्टिं न दत्तवती ।

सर्गः १८

१–८. श्लोका एकान्वयिनः ।

१२. न रमते, नानन्दीभवति । अर्थतस्तु ' न विरमती 'ति, न 'स्थिरीभवती'ति ।

२८. आसां वराकीणां क्षुधां वशं मा गमः, क्षुद्र क्रोधवशं मा गच्छेःयर्थः ।

२९. रुदद्भिररुचिभावं व्यक्तीकुर्वन्तस्तैः।

३९. शेषस्य बलरामस्य निष्पेषः पेषणं भविष्यति शिवजन्यमिति शङ्कया गरुत्मता दिवि भुवि च ईप्सितो हरिर्धृतो धैर्यपूर्वकं धनुराकर्षत् तच्चित्रमाश्चर्यजनकं बभूवेत्यर्थः ।

४४. अभिशुने प्रतिपक्षोपरि जयलाभके।

४९. हानिर्हननम् ।

५६. क्षेपके–शेमे शमयांचक्र इत्यर्थः। असिद्धोऽयं प्रयोगः संभाव्यविषय एव। 'शामाद्रे' इतिस्वरूपं प्राचीनं लेखनमपि प्रामादिकमेव ।

६३. विद्युदेव आलोकः, तेन आन्ध्यस्य अन्धकारस्य अनिदर्शनं निदर्शनाभावो यस्यां तादृशी, उज्ज्वलप्रकाशयुक्तेति यावत् ।

६४. चक्रिणो विष्णोर्हस्तसांगत्यं हस्तमिलनम् ।

६५. खट्वाङ्गः शिवस्य शस्त्रविशेषो यो योगिभिरप्यूह्यते । अग्रगैरग्रसरैरित्यर्थः ।

६८. पाथो जलमिति ।

७१. आस्यसहस्रिणी मुखसहस्रयुक्तेति गङ्गाविशेषणम् ।

७४. त्रिधक्तैरत्यन्तमवलग्नैर्वावल्लैर्व्यापृतैर्जिह्वायुग्मैरिति अन्वयः । इवेत्युत्प्रेक्षावाचकः । अत्र 'वावल्ले'ति देशीपदं 'व्यापृते'त्यर्थे प्रयुक्तं कविना ।

७८. 'यात्वधो वावभूस्तावौ छत्रभंगो रसातले' इति त्वादर्शे भ्रष्टः पाठः । वासुकिवाक्यमिदम् । 'अस्माकं युद्धे अद्य भूर्भूमिः अधो रसातले यातु, अथवा मद्विजये तव च्छत्रभङ्गः शिरोरूपच्छत्रसहस्रस्य नाशो रसातले स्ताद् भवत्वि'त्यर्थः ।

८०. पाठीनो मत्स्यविशेषः । पाठीनानां निवहाः समूहास्तैरिव ।

८३. वारणिका रक्षकचर्म 'ढाले'ति प्रसिद्धा ।

८५. उषा स्थाली, तस्या अंसभागे मध्ये मुक्तानां फणानां गणैः । 'मुक्ता' इति तु भ्रष्टः पाठः, आकारस्य तत्र निरर्थकत्वात् ।

८६. पाली कर्णप्रान्तः ।

सर्गः १९

४. कदम्बगोलः कदम्बवृक्षस्य पुष्पगुच्छः । पाकदशायां निरस्ता दूरीभूता समस्ता सर्वे पक्ष्माणः रजांसि यस्य स इति । तादृशः कदम्बगोलको यथा तथा ।

१६. कोल्लापुरो दैत्यविशेषः । संचारी संचरणशीलः कोल्लापुरो दैत्यस्तत्सदृशो दारुणो भयानकस्तेन रथेन ।

२१. अद्भिर्जलैः सहिताः शरास्तैः । जलकणयुक्तैरित्यर्थः ।

२२. क्षयस्य प्रलयकालस्य ।

२७. अनुस्वानः प्रतिघोषः सखा यस्य सः, प्रतिघोषयुक्तो रवस्योर्मिर्गतितरंगः ।

२८. ताडका राक्षसी यथा राममनु व्रजन्ती, आशालिका कोऽपि विद्याविशेषः, सा यथा अञ्जनाया आत्मजं हनुमन्तमनु व्रजन्ती तथेत्यग्रे ।

३३. कोटवी नग्ना बाणमाता ।

३४. समितिर्युद्धं, तां श्वसन्तो युद्धप्रिया इत्यर्थः ।

सर्गः २०

१२. तेनाख्यो गानारम्भे क्रियमाणः संकेतविशेषः ।

१४. प्रवङ्गः प्लवंगो वानर इति ।

४२. प्रवर्ततः प्रवर्तमानस्य । अत्र परस्मैपदमार्षम् ।

४७. अस्तान्यग्रगाणि यया ताम्-नग्नामित्यर्थः ।

४८. नैशः, निशाया अयम्-निशायां प्रवृत्त इत्यर्थः ।

५१. वलक्षस्य वलक्षस्योज्ज्वलस्य, स्पष्टस्वरूपसूचकस्येत्यर्थः ।

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रकाशित ग्रन्थ

१ प्रमाणमञ्जरी – तार्किकचूडामणि सर्वदेव। २ यन्त्रराजरचना – महाराजाधिराज जयसिंहदेव कारिता। ३ कान्हडदे प्रबन्ध – महाकवि पद्मनाभ। ४ क्यामखांरासा – नवाब अलफखां (कविवर जान)। ५ लावारासा – चारण कविया गोपालदान। ६ महर्षिकुलवैभवम् – विद्यावाचस्पति स्व॰ श्री मधुसूदनजी ओझा। ७ वृत्तिदीपिका – मौनि कृष्णभट्ट। ८ राजविनोद काव्य – कवि उदयराज। ९ तर्कसंग्रहफक्किका – क्षमाकल्याणगणी। १० नृत्तसंग्रह – अज्ञातकर्तृक। ११ शृंगारहारावलि – हर्षकवि। १२ कृष्णगीति – कवि सोमनाथ। १३ कारकसंबन्धोद्योत – पं॰ रभसनन्दी। १४ शब्दरत्नप्रदीप – अज्ञातकर्तृक। १५ चक्रपाणिविजयकाव्य – पं॰ लक्ष्मीधर भट्ट।

प्रेस में

१ त्रिपुराभारतीलघुस्तव – सिद्धसारस्वत लघुपण्डित। २ बालशिक्षा व्याकरण – ठक्कुर संग्रामसिंह। ३ करुणामृतप्रपा – महाकवि ठक्कुर सोमेश्वरदेव। ४ पदार्थरत्नमञ्जूषा – पं॰ कृष्णमिश्र। ५ शकुनप्रदीप – पं॰ लावण्यशर्मा। ६ उक्तिरत्नाकर – पं॰ साधुसुन्दर गणी। ७ प्राकृतानन्द – पं॰ रघुनाथ कवि। ८ ईश्वरविलासकाव्य – पं॰ कृष्णभट्ट। ९ काव्यप्रकाश – भट्ट सोमेश्वर। १० नृत्यरत्नकोश – महाराजाधिराज कुंभकर्णदेव। ११ नन्दोपाख्यान – अज्ञातकर्तृक। १२ चान्द्रव्याकरण – चन्द्रगोमी। १३ रत्नकोश – अज्ञातकर्तृक। १४ कविकौस्तुभ – पं॰ रघुनाथ मनोहर। १५ एकाक्षरकोशसंग्रह – विविधकविकर्तृक। १६ शतकत्रयम् – भर्तृहरि, धनसारकृत व्याख्यायुक्त। १७ वसन्तविलास – अज्ञातकर्तृक। १८ दुर्गापुष्पाञ्जलि – म॰ म॰ पं॰ दुर्गाप्रसादजी द्विवेदी। १९ दशकण्ठवधम् – म॰ म॰ पं॰ दुर्गाप्रसादजी द्विवेदी। २० गोरा बादल पदमिणी चऊपइ – कवि हेमरतन। २१ बांकीदासरी ख्यात – महाकवि बांकीदास। २२ मुंहता नैणसीरी ख्यात – मुंहता नेणसी इत्यादि।

प्राप्तिस्थान – सञ्चालक, राजस्थान पुरातत्त्वान्वेषण मन्दिर, जयपुर।